सुदर्शन चरितम्

मुमुक्षु भट्टारक श्री विद्यानन्दि-विरचितं

''संपादक''

आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

प्रकाशक:

श्री सत्यार्थी मीडीया

रविन्द्र भवन इन्द्रा नगर टूण्डला चौराहा

फिरोजाबाद (उत्तर प्रदेश)

ॐ ह्रीं नमः

प्रथम संस्करण : दिसम्बर 2017

प्रतियाँ : 31,00

सुदर्शन चरितम्

आचार्य वसुनंदी मुनि

मंगलाशीष:

प.पू. राष्ट्रसंत, सिद्धांत चक्रवर्ती श्वेतपिच्छाचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी मुनिराज

मुद्रक :जैन रत्न सचिन जैन ''निकुंज''

मो. 9058017645

प्रस्तुत पुस्तक में मुद्रित समस्त सामग्री, आवरण पृष्ठ, चित्रादि के सम्बन्ध में प्रकाशक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं। इसके किसी भी अंश को पूर्व में बिना लिखित अनुमति के मुद्रित करना या करवाना, कॉपीराइट नियमों का उल्लंघन होगा, जिसका सम्पूर्ण दायित्व उन्हीं का होगा और हर्जे – खर्चे के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे ।

प्राग्वक्तव्य

आचार्य श्री वसुनंदी जी मुनिराज

पुण्य-पाप, सुख-दुख, दिन-रात, धर्म-अधर्म, सज्जन- दुर्जन, प्रकाश- अंधकार, शिष्ट-दुष्ट, मित्र-शत्रु, साधक-विराधक, राग-द्वेष, जीव-अजीव, मुक्ति-संसार, वीतरागी-रागी, सर्वज्ञ-छद्मस्थ, पर्वत-सागर, सूर्य-चन्द्र, चढाव-उतार, साहूकार-चोर, रक्षक-भक्षक, ब्रह्मचारी- व्यभिचारी, सत्यवादी-मिथ्यावादी, अहिंसक-हिंसक, सम्यक्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि, भगवान-भक्त, संयमी-असंयमी, सरलता-वक्रता, नम्रता-कठोरता, विनय-अहंकार, अमीर-गरीब, क्षमा-क्रोध, संतोष-लोभ, सुगंध-दुर्गंध, सरस -नीरस, शुभ-अशुभ, ज्ञानी-मूर्ख, सुगम-दुर्गम, निस्पृही-परिग्रही, विसक्त-आसक्त, सत्य-असत्य इत्यादि अच्छाईयाँ व बुराइयाँ इस अनादि-निधन वसुंधरा पर अनादिकाल से हैं और अनन्तकाल तक रहेंगीं।

प्रत्येक बुराई अच्छाई को जन्म देती है, पोषण व रक्षण करती है, बुराई के कारण ही अच्छाई की कीमत है। बुराई के गहन तम में ही एक अच्छाई का दीपक सभी को दूर से प्रकाशित होता है। बुराईयों का (अमावस्या के अंधकार सम) गहन तम भी अच्छाई की एक चिंगारी को भी नष्ट नहीं कर सकता। इसी प्रकार इस हिरण्यगर्भा वसुधरा पर दुष्ट और शिष्ट मानव भी हुए। दुष्ट लोंगों की इस दुनियां में आज तक निंदा हो रही है तो महान पुरूषों का यशोगान भी आज जमीं से आसमां तक गूंज रहा है।

शीलव्रत का पालन करने वाली महिलारत्नों के नाम आज भी इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णअक्षरों से अंकित हैं। आज भी उन नारियों की विश्व पूजा करता है। जिन्होने सहस्रों संघर्षों व सैकडों उपसर्गों को सहन करके भी अपने शीलव्रत को नहीं छोडा। आज भी विजया, सीता, द्रोपदी, सुतारा, नीलीबाई, अनंतमती, मनोरमा, पद्मावती, रयणमंजूषा, मदनरेखा,

सुरसुन्दरी, अंजना, सोमा, चन्दनबाला, प्रभावती, सुलोचना, शशिप्रभा आदि आदर्श नारियों के नाम धर्मप्राण भारतीय मानवों के लिए देवी तुल्य पूज्य व श्रद्धेय हैं। इसका आशय ऐसा भी नही है कि शीलव्रत का पालन करने में पुरूष कहीं पीछे रहा है अथवा उसने संघर्षों का सामना न किया हो जैन दर्शन में ऐसे अनेकानेक उदाहरण पुरूषों के सम्बन्ध में भी प्रसिद्ध हैं-

नलकूवर की पत्नी रम्भा ने रावण को शीलव्रत से डिगाना चाहा किन्तु रावण ने शीलव्रत नही तोडा, सीता के जीव ने राम को, जम्बूस्वामी की पत्नियों ने जम्बूस्वामी को, विजया ने विजय को, कनकमाला ने प्रद्युम्न कुमार को, यक्षी ने वंरांग कंमार को, देवी ने जय कुमार को, राजुल ने नेमिनाथ को, यक्षिणी ने भद्रबाहुस्वामी को, विशालाक्षी रानी व रंगनि, चामरी दासियों ने अंगभूषण मुनिराज को, एक ग्रामीण स्त्री व व्यंतरदेवी ने सुदर्शन सेठ को, अपने शीलव्रत से डिगाना चाहा एवं स्वंय में आसक्त करना चाहा किन्तु, ये लोग अपने शीलव्रत में मेरूवत दृढ रहे और इन्हें मोहित करने वाली स्त्रियाँ आदि स्वंय पराजित होकर इनके चरणों में झुक गई। ऐसे शीलव्रत की महिमा से मण्डित महापुरूषों की कथा पढने-सुनने से मानव मन धर्म को धारण करने में व शीलव्रत का पालन करने में सुदृढ हो जाता है।

प्रस्तुत ग्रन्थ "सुदर्शन चरित्र" आचार्य"श्रीविद्यानंदि" जी कृत सरल सुमन सहज सुबोधक ग्रंथ है। यूँ तो महामुनि सुदर्शन के जीवन चरित्र से सम्बन्धित ग्रंथ अन्य आचार्यों, विद्वानों, भट्टारकों व मनीषी साधकों ने भी लिखे हैं। किन्तु प्रत्येक कवि की अपनी अलग-अलग ही विशेषताएँ भी होती हैं।

प्राचीन साहित्य में आचार्य शिवकोटि(शिवार्य) कृत भगवती अराधना ग्रंथ में भी मुनि श्री सुदर्शन के विषय में गाथा ७८५ में इस प्रकार लिखा है-

अण्णाणी वियगोवो आराधिता मदो णमोक्कारं।

चंपाए सेट्ठि कुले जादो पत्तो य सामण्णं।।७८५।। मूलाराधना

अर्थ- अज्ञानी होते हुए, सुभग नामक ग्वाले ने णमोकार मंत्र की आराधना की, जिसके प्रभाव से वह मरकर चम्पा नगर के श्रेष्ठिकुल में उत्पन्न

हुआ और श्रामण्य को प्राप्त हुआ।

विक्रम सं. ९८९ शक संवत् ८४३ में श्री हरिषेणसूरि द्वारा रचित बृहद्कथा कोश में भी ६० वीं कथा सुभग ग्वाले की है, जो कि १७३ पद्यों में पूर्ण हुई है। ग्यारहवी शताब्दी के अन्त में श्री प्रभाचन्द्राचार्य जी ने आराधना कथा प्रबन्ध(आराधना सत्सुकथा कोश) की रचना की, इसमें भी २३ वीं कथा सुभग ग्वाले की कथा अत्यंत संक्षेप में दी गई है। वि.सं. ११२३ में श्री श्रीचन्द्र मुनिराज द्वारा रचित अपभ्रंश भाषा के कहाकोस(कथाकोश) में २२ वीं सन्धि के १६ कवडकों में सुभग गोपाल व सेठ सुदर्शन का चरित्र कहा गया है। ग्यारहवीं शताब्दी में ही नयनन्दि मुनिराज ने''सुदंसण चरिउ'' नामक अपभ्रंश भाषा के ग्रन्थ में विविध छन्दों के माध्यम से काव्यात्मक ढंग से वर्णन किया है। यह सुदंशण चरिउ ग्रन्थ १२ संधियों से युक्त है, इसकी रचना अवन्ति की राजधानी धारानगरी के बाडविहार नामक जैन मंदिर में राजा भोज के समय में हुई थी।

विक्रम की बारहवीं शताब्दी में रामचन्द्र मुमुक्षु ने पुण्यास्रव कथाकोश की रचना की। उसमें द्वितीय अधिकार में ''पंचनमस्कार मंत्र फलम्'८ में आठवीं कथा सुभग गोपालचर सेठ सुर्दर्शन की कही गई है। भट्टारक श्री सकलकीर्ति आचार्य जी विक्रम संवत् (१४४३-१४९९) पंद्रहवीं शताब्दी में हुए, उन्होनें लगभग ७० हजार श्लोक प्रमाण साहित्य की रचना की, इनके लोक कल्याणकारी साहित्य व शास्त्रों की श्रृंखला में श्री सुदर्शन चरित्र भी एक पवित्रतम कृति है।

हरिषेण सूरि ने अपने वृहत्कथा कोश में सुदर्शन मुनिराज को न तो कामदेव ही माना है और न ही अन्तःकृतकेवली किन्तु नयनन्दि आचार्य ने अन्तिम कामदेव तथा भगवान महावीर स्वामी के काल में होने वाले इन (१०) अतः कृत केवलियों में से पांचवें अन्तःकृत केवली माना है।

विभिन्न आचार्यों द्वारा रचित-

हरिषेण सूरि ने चम्पानगरी के राजा का नाम-दन्तिवाहन, प्रभाचन्द्राचार्य जी ने नृवाहन एवं अन्य आचार्यों ने धाडीवाहन माना है। संभव

है ये तीनों संज्ञायें एक ही व्यक्ति के लिए प्रयुक्त की गई हैं।

हरिषेण सूरि ने सुदर्शन के गर्भ में आने के सूचक स्वप्नादि का वर्णन नही किया किन्तु प्रायः अन्य सभी आचार्यों ने किया है।

सुदर्शन स्वामी की जन्म तिथि पौष सुदी ४ बुधवार नयनंदि सूरि ने कही है, सकल कीर्ति जी ने मात्र तिथि कही है दिन नही, शेष आचार्यों ने तिथि का उल्लेख नहीं किया।

सुभग ग्वाले द्वारा शीत परीषह सहने वाले मुनिराज की शीतबाधा को अग्नि जलाकर दूर करने का कथन श्री सकलकीर्ति जी, श्री विद्यानंदी जी आचार्यों ने किया है किन्तु हरिषेणसूरि जी ने नहीं किया।

सुदर्शन व मनोरमा के विवाह का मुहुर्त निकालने वाले ज्योतिषी का नाम ''श्रीधर'' श्री नयनंदी जी व श्री सकलीकीर्ति जी ने किया है तथा विवाह वैसाख सुदी पंचमी को हुआ। इस कथन को विद्यानंदि जी ने भी स्वीकार किया है।

श्री नयनन्दि जी व श्री सकलकीर्ति जी ने श्री सुदर्शन स्वामी की निर्वाण तिथि पौष सुदी पंचमी सोमवार मानी है। आ. श्री विद्यानंदि जी ने निर्वाण की कोई तिथि नही दी है।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री वीरसेन जी ने धवला पुस्तक १ में सुदर्शन स्वामी को पाँचवा अन्तःकृत केवली माना है।

''नमि मतंग सोमिल रामपुत्र सुदर्शन यमलीक वलीक किष्किंविल पालम्वाष्ट पुत्रा इति एते दश वर्द्धमान तीर्थंकर तीर्थे..... दारूणानुपसर्गान्निर्जित्य कृत्स्न कर्मक्षया - दन्तकृतो'' ष.ख.(धवला टीका) १/१,१२/१०३/२,

वर्धमान तीर्थंकर के तीर्थ में नभि, मतंग, सोमिल, रामपुत्र, सुदर्शन, यमलीक, वलीक, किष्किंविल, पालम्ब और अष्टपुत्र ये दस मुनिराज दारूण उपसर्गों को जीतकर सम्पूर्ण कर्मों के क्षय से अन्तःकृत केवली हुए।''

प्रस्तुत ग्रंथ ''सुदर्शन चरित्र'' आचार्य श्री विद्यानंदि(मुमुक्षु) की रचना है, कृति सरल भाषा में है, अल्पज्ञ व्यक्तियों के लिए भी रोचक शैली है,

स्वाध्याय करने वाला भव्य महानुभाव पढते -पढते बोर नही होता। अपितु उसके अंदर यही भाव रहते हैं कि ओद्योपांत पढे बिना इस ग्रन्थ को न छोडा जाये।

इस ग्रन्थ में मुख्य रूप से ग्वाले के द्वारा मुनिराज की एक रात्रि में की गई वैय्यावृत्ति का फल, णमोकार महामंत्र का महात्म्य, कामी पुरूषों की कामवासना की हद, शीलव्रत धारी की दृढशील प्रतिज्ञा का फल, ब्रह्मचर्याणु व्रत की परीक्षा, नारी की कुटिलता, वैरागी के वैराग्य की दृढता, संसार की असारता, भोगों की नश्वरता, बारह भावनाओं का यथार्थ स्वरूप, दुष्टों की दुष्टता एवं साधक की सहनशीलता, उपसर्गों का समता से जीता जाना इत्यादि विषयों को पूज्य श्री विद्यानंदि जी ने सरल शब्दों में समझाया है किन्तु, कथा की रोचकता कहीं कम नहीं हुई है। वह अखण्ड रूप से चलती ही रही है। इस शास्त्र में कही नीतिनियम, शिष्टाचारी व धार्मिक संस्कारों की शिक्षा भी दी गई है।

प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना सं. १५६३ में गंधारपुरी (सूरत-गुजरात प्रांत) में स्थित जैन मंदिर में की गई थी। प्रस्तुत गंथ के रचियता श्री विद्यानन्दि जी मूल संघ सरस्वती गच्छ के बलात्कारगण व कुंदकुंदान्वय में हुए प्रभाचंद्र के शिष्य पद्मनंदी, के शिष्य देवेन्द्रकीर्ति, के शिष्य हुए। इन आचार्य विद्यानन्दि जी के प्रमुख ४ शिष्य थे प्रथम- मल्लिभूषण, द्वितीय-श्रुतसागर, तृतीय-सिंहनन्दि, चतुर्थ-नेमिदत्त।

पट्टावलियों, प्रतिमालेखों व जैन इतिहास में उल्लिखित जानकारी के अनुसार श्री विद्यानन्दि जी वि.सं. १४६३ के पूर्व ही चन्देरी पट्ट पर भट्टारक की गद्दी के स्वामी हुए थे। श्री विद्यानंदि जी जाति के परवार थे इनका विशेष परिचय अभी अनुपलब्ध है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के द्वितीय प्रकाशन में सहयोगी संघस्थ सभी साधुवृंदों व सभी त्यागीव्रती महानुभावों को सुसमाधिरस्तु आशीर्वाद जिनवाणी की सेवा में अधिक से अधिक सहयोगी बनें। प्रकाशन- निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति एवं स्वकीय न्यायोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करने वाले सुधी श्रावकों को सपरिवार

धर्म वृद्धि आशीर्वाद।

प्रस्तुत ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ श्रमण पाठक द्वारा जो त्रुटि रह गई हों उन्हें सकल संयमी, अभेद रत्नत्रयधारी, विज्ञपुरूष क्षमा करें एवं संशोधन हेतु सुझाव भेजने का अनुग्रह करें तथा सुधी पाठक गण समीचीन अर्थ को ही अंगीकार करें। इस ग्रन्थ का स्वाध्याय हंसवत् गुणग्राही दृष्टिकोण बनाकर, श्रद्धा, विनय व भक्तिपूर्वक आद्योपांत ही करना चाहिए।

यदि आप इस ग्रन्थ के स्वाध्याय से आत्म कल्याण व परहित में कुछ भी प्रवृत्ति करते हैं तो लेखक , अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक सभी का श्रम सार्थक होगा और यही जिनवाणी की सच्ची सेवा व भक्ति कहलायेगी। आप

"सर्वेषां मंगलं भवतु"

श्री शुभमिति
मार्गशीर्ष शुक्ला पंचमी
वी. नि. संवत - 2544
वि. सं - 2074
23, नवम्बर, 2017
गुरुवार

ॐ ह्रीं नमः
जिनचरणाम्बुज चंचरीकः साधनेच्छुकः
संयमानुरक्तः कश्चिदल्पज्ञ सूरिश्रमणः
ग्रीनपार्क, दिल्ली

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय-परिचय	पृ.क्रम संख्या
1.	मंगलाचरण, परमदेव समागम भगवान महावीर स्वामी के समवशरण का वर्णन	8
2.	राजा श्रेणिक द्वारा पृच्छना, गौतम गणधर का तत्वोपदेश	20
3.	अन्तिम कामदेव सुर्दशन स्वामी का जन्म	28
4.	सुदर्शन व मनोरमा का विवाह	37
5.	सुदर्शन को श्रेष्ठी पद की प्राप्ति	47
6.	कपिला का प्रलोभन एवं रानी अभयमती का व्यामोह	56
7.	रानी अभयमती द्वारा सुर्दशन पर उपसर्ग, यक्ष द्वारा निवारण, एवं शील व्रत के माहात्म्य का वर्णन	65
8.	सुदर्शन एवं मनोरमा के पूर्व भवों का वर्णन	77
9.	द्वादश अनुप्रेक्षाओं का वर्णन	98
10.	सुदर्शन सेठ का मुनि दीक्षा ग्रहण करना एवं कठोर तपस्या करना	107
11.	व्यन्तरी द्वारा सुदर्शन मुनिराज पर उपसर्ग एवं केवल ज्ञानोत्पति वर्णन	119
12.	सुदर्शन केवली का धर्मोपदेश, विहार व मोक्ष का कथन, पंच परमेष्ठी मंत्र का प्रभाव, ग्रंथकार की प्रशस्ति (परम्परा) एवं अंतिम मंगलाचरण।	126

ॐ

मुमुक्षु भट्टारक श्री विद्यानन्दि-विरचितं

सुदर्शन चरितम्

प्रथमोऽधिकारः

मंगलाचरण

लोकालोक के प्रकाशक वृषभदेव को प्रणाम कर जितशत्रु से उत्पन्न शत्रुओं को जीतने वाले लोगों पर भी विजय प्राप्त करने वाले श्री अजितनाथ को (प्रणाम कर)।।१।।

और भव का नाश करने वाले सम्भव(नाथ) को प्रणाम कर मैं सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और सात तत्वों के उपदेशक अभिनन्दन नाथ जिनराज की स्तुति करता हूँ।।२।।

सुमित को देने वाले, चिदानन्द और गुणों के सागर सुमित(नाथ) की वन्दना करता हूँ और कमल के समान लाल वर्ण वाले प्रातिहार्यादि से भूषित पद्मप्रभ की वन्दना करता हूँ।।३।।

सदा आनन्द स्वरूप, धर्म में समर्थ, संसार के गुरू, धर्मरूपी भूषण से संयुक्त सप्तम जिन सुपार्श्वनाथ की मैं स्तुति करता हूँ।।४।।

महासेन से उत्पन्न चन्द्र चिन्ह वाले श्रेष्ठ जिन चन्द्रप्रभ की और श्वेतवर्ण युक्त पुष्पदन्त की मैं सदा स्तुति करता हूँ।।५।।

जन्म, जरा, मरण रूप तीनों व्याधियों के विनाशक परिवर्तनीय संसार रूपी दावाग्नि का शमन करने के लिए एकमात्र घने मेघस्वरूप शीतल (नाथ) की वंदना करता हूँ।।६।।

कल्याण के निधि, सदा पवित्र, पावन श्रेयांस(नाथ)की वंदना करता हूँ, वासुपूज्य से उत्पन्न जगत्पूज्य जिन को मैं वंदना करता हूँ।।७।।

देवेन्द्र के द्वारा जिनके चरण कमलों की वंदना की गई है ऐसे

निष्कलंक पूज्यपाद विमल (नाथ) की वंदना प्रारब्ध की सिद्धि के लिए करता हूँ अथवा प्रारब्ध की सिद्धि के लिए अकलंक और पूज्पााद की स्तुति करता हूँ अथवा प्रारब्ध की सिद्धि के लिए पूज्यचरण अकलंक की वन्दना करता हूँ अथवा प्रारब्ध की सिद्धि के लिए निष्कलंक पूज्यपाद की वंदना करता हूँ।।८।।

संसार रूपी समुद्र से तारने वाले अनन्त (नाथ) जिन की मैं वन्दना करता हूँ। भानुराज से उत्पन्न धर्मस्वरूप धर्म(नाथ) जिन की भी मैं वंदना करता हूँ।।९।।

संसार की शांति करने वाले, विश्वसेन से उत्पन्न चक्रधारी, मृगचिन्ह युक्त शान्तिनाथ भगवान संसार के द्वारा वन्दनीय हैं।।१०।।

कुन्थु आदि जीवों के प्रति दया भाव से युक्त, हृदय में करूणा से युक्त, धर्मचक्र से युक्त कुन्थुनाथ की (मैं) सदा वन्दना करता हूँ।।११।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रय से युक्त, सेवकों के हितैषी रत्नत्रय के दाता अरहनाथ की मैं वन्दना करता हूँ।।१२।।

कर्म के जीतने में श्रीमल्ल-मल्लि नाथ को तथा मुनिसुव्रत जिन की मैं स्तुति करता हूँ। भुक्ति और मुक्ति के दायक श्रीजिन नमीश (नमिनाथ) को मैं नमस्कार करता हूँ।।१३।।

केवलज्ञानरूपी नेत्र वाले नेमिनाथ को मैं अत्यधिक रूप से नमस्कार करता हूँ। प्रसिद्ध महिमा के स्थान श्री पार्श्वनाथ की मैं वन्दना करता हूँ।।१४।।

वीर, महावीर, वर्द्धमान सहित, अतिवीर आदि नाम वाले सन्मति जिन की मैं स्तुति करता हूँ।।१५।।

शोभा से युक्त अथवा केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी से युक्त, केवलज्ञान रूप सम्पत्ति वाले तीनों कालों में उत्पन्न ये जिनाधीश मेरी सब शान्ति के लिए होवें।।१६।।

जिनके स्मरण मात्र से समस्त सिद्धियाँ उत्पन्न हो जाती हैं, ऐसे तीनों लोकों के शिखर पर स्थित सिद्धों की मैं सदा स्तुति करता हूँ।।१७।।

तीनों लोकों के द्वारा मान्य, सन्माता के समान सुखप्रद जिनेन्द्र

भगवान के मुख कमल से उत्पन्न सरस्वती की स्तुति करता हूँ।।१८।।

प्रातःकाल में कमलिनी के समान जिसके प्रसाद से सज्जनों की बुद्धि नित्य विस्तृत होत है, उस जिनवाणी की मैं स्तुति करता हूँ।।१९।।

गुणरूपी रत्नों की खान, श्रुत के सागर, संसार रूपी समुद्र के तारक गौतमादि गणधरों को नमस्कार करता हूँ।।२०।।

कवित्वरूपी कमलिनी के समूह को जागृत करने के लिए सूर्य के समान, महिमा के निवास स्थान कुन्दकुन्द नामक मुनीन्द्र को मैं नमस्कार करता हूँ।।२१।।

जिन भगवान के द्वारा कथित सात तत्वों के अर्थ के कर्ता अर्थात् तत्वार्थसूत्र के कर्ता कवीश्वर उमास्वामी मुझे नित्य ज्ञानरूपी सम्पत्ति प्रदान करें।।२२।।

मिथ्यात्व रूपी अन्धकार के लिए सूर्य, भव्य कमलों के समूह को सुख प्रदान करने वाले स्वामी समन्तभद्र नाम के धारक मेरे भावी तीर्थकर जयशील हों।।२३।।

विप्रवंश के अग्रणी, सूरि, पवित्र पात्रकेशरी जो कि जिनेन्द्र भगवान के चरणकमलों के सेवन के एकमात्र भ्रमर हैं, वे जयशील हों।।२४।।

सूर्य के उदय होने पर जिस प्रकार उल्लू भाग जाते हैं, उसी प्रकार जिसकी वाणी-रूपी किरणों से बौद्धादि भाग गए, वह भट्ट अकलंक कवि मेरे कल्याण के लिए हों।।२५।।

श्री जिनेन्द्र भगवान के मन रूपी समुद्र की वृद्धि के लिए जो एक मात्र उत्तम चन्द्रमा हैं, उन संसार के द्वारा वंदना करने योग्य मुनि नायक जिनसेन की मैं स्तुति करता हूँ।।२६।।

रत्नत्रय से जिनकी आत्मा पवित्र है, जो सम्यक् चारित्र का आश्रय लेते है तथा मूल संघ के अग्रणी हैं, वे महान् रत्नकीर्ति गुरू नित्य मेरी रक्षा करें।।२७।।

जो कविता करने में समर्थ हैं, कुवादि रूपी मतवाले हाथियों को निर्मद करने में सिंह के समान हैं, ऐसे गुणभद्र गुरू जयशील हों।।२८।।

जो भव्य कमलों के लिए सूर्य के समान हैं ऐसे गुणों की खान जगतपूज्य भट्टारक प्रभाचंद्र मेरे द्वारा नित्य वन्दित किए जाते हैं।।२९।।

जीवाजीवादि तत्वों का उद्योत करने के लिए जो सूर्य के समान हैं, एसे दयानिधि सूरिश्रेष्ठ देवेन्द्रकीर्ति की मैं वंदना करता हूँ।।३०।।

जो विशेष रूप से मेरे गुरू थे, दीक्षा रूपी लक्ष्मी की कृपा जिन्होनें मेरे ऊपर की थी, उन गुरू देवेन्द्रकीर्ति की मैं सुसेवक विद्यानन्दी भक्तिपूर्वक वन्दना करता हूँ।।३१।।

श्री जिनेन्द्रोक्त सद्धर्म रूपी कमलों की खान के लिए जो सूर्य के समान हैं, ऐसे सम्यग्दृष्टि शिरोमणि आशाधर सूरि जयशील हों।।३२।।

इस प्रकार मंगल के लिए सुखप्रदान करने वाली आप्त वाणी की भली प्रकार स्तुति कर सज्जनों के सच्चारित्र को कहता हूँ।।३३।।

तुच्छ मेधा (बुद्धि) होने पर भी संक्षेप से सुदर्शन महामुनि के चरित्र की रचना कर मैं पवित्र हुआ हूँ, क्योंकि अमृत का स्पर्श भी सुख के लिए होता है।।३४।।

इस प्रकार मन में मान करके भक्ति पूर्वक सुख को लाने वाले उस चरित्र को मैं कहता हूँ, जो कि भव्य जीवों को भोग और मुक्ति दिलाने वाला है।।३५।।

जिनके सुनने से सम्पत्ति दोनों लोकों में शुभ होती है, हे भव्य सज्जनों ! सुख के कारण उन सुदर्शन मुनि के चरित्र को सुनो।।३६।।

(राजा श्रेणिक (बिम्बसार) वर्णन)

समस्त द्वीप समुद्रों के मध्य में स्थित जम्बूद्वीप में एक लाख योजन प्रमाण वाला सुदर्शन मेरू है।।३७।।

जिसके चारों वनों में चारों दिशाओं में अत्यधिक समुन्नत जिनेन्द्र प्रतिमाओं से युक्त सुख देने वाले भवन हैं।।३८।।

उसके दक्षिण की ओर सुखदायक, जिनेन्द्र भगवान् के पंचकल्याणकों से पवित्र उत्तम भरत क्षेत्र है।।३९।।

वहाँ पर भुवन में विख्यात मगध नामक देश है, जहाँ पर अपने पूर्व पुण्य से लोग सुखपूर्वक रहते हैं।।४०।।

अत्यधिक सुख को प्रदान करने वाला जो नाना आकार वाले अनेक नगर, ग्राम, पुर और पत्तन आदि से सुराजा के समान सुशोभित होता है।।४१।।

धन-धान्य, मान्य जन और सम्पदादि से भरा हुआ जो देशराज सुशोभित है अथवा जो चक्रवर्ती की निधि है।।४२।।

जहाँ पर स्वच्छ जल वाले सुविस्तीर्ण, बहुत बडे मानसरोवर से उपमा देने योग्य अथवा बडे लोगों के मन के समान नित्य कमलों की खान जलाशय हैं।।४३।।

अनेक प्रकार के इक्षुओं से, अन्य रसों से, सरस अच्छे फल आदि से जो अपने से उत्पन्न सुरसपने को अत्यधिक दिखलाता है।।४४।।

जहाँ पर मार्ग में सफल, अच्छी कान्ति वाले सबकों प्रकृष्ट रूप से संतृप्त करने वाले सज्जन अत्यधिक रूप से सुशोभित होते हैं अथवा वनादि में अच्छी छाया वाले सबको तृप्त करने वाले सफल ऊँचे-ऊँचे वृक्ष अत्यधिक सुशोभित होते हैं।।४५।।

जहाँ पर देश, पुर, ग्राम, पत्तन, उत्तम पर्वत और वन में उत्तम ध्वजादि से जिनेन्द्र भवन अत्यधिक शोभित होते हैं।।४६।।

जहाँ पर आदरपूर्वक नित्य जिनेन्द्रों की यात्राओं से, बड़ी-बड़ी प्रतिष्ठाओं से भव्य महान् शुभ पुण्य का संचय करते हैं।।४७।।

जहाँ पर दर्शन और व्रतादि से युक्त श्रावक महामान पात्रदानों से तथा सज्जनो से घिरे होकर जैनेन्द्र द्वारा प्ररूपति धर्म का पालन करते हैं।।४८।।

जहाँ पर नारियाँ भी रूप से युक्त, सम्यक्त्व रूपी व्रत से मण्डित, धर्म कार्यों में पण्डित तथा पुत्र रूपी सम्पदा से सुशोभित हैं।।४९।।

जहाँ देवांगनाओं को जीतने वाली नारियाँ उत्तम वस्त्र और आभूषणों से, दान, पूजा आदि गुणों से और नित्य परोपकारादि से जयशील होती हैं।।५०।।

जहाँ पर भव्यों के पुण्य से कभी भी ईतियाँ नहीं होती हैं। जैसे कि सूर्य का उदय होने पर सत्य रूप में अन्धकार का समूह नहीं ठहरता है।।५१।।

जहाँ पर रत्नत्रय से सुशोभित मुनिगण वनादि में तत्वज्ञानों से, तप और ध्यानों से स्वर्ग और मोक्ष को जाते हैं।।५२।।

इत्यादि सम्पदाओं के सार रूप उस मनोहर देश में इन्द्रनगरी के तुल्य राजगृह नामक नगर है।।५३।।

वह अनेक प्रकार के भवनों से युक्त, तीन शालों से सुशोभित, रत्नादि से निर्मित, तोरण से युक्त तथा गोपुर द्वार से युक्त है।।५४।।

जिसके चारों ओर स्वच्छ जल से भरी हुई खाइयाँ पद्मों के समूह से सुशोभित पवित्र स्वर्ग गंगा के समान सुशोभित है।।५५।।

अथवा जो पुर जिनदेवादि प्रासाद की ध्वज पंक्तियों से अपनी शोभा से सन्तुष्ट हुए मनुष्य और देवों को जहाँ पर बुलाता है।।५६।।

अथवा जहाँ नाना रत्न, सुवर्ण आदि मणि और माणिक्य आदि वस्तुओं से भरी हुई सज्जनों को आनन्द देने वाली वस्तुऐं रखी जाती हैं।।५७।।

वहाँ पर क्षत्रियों का शिरोमणि, राजविधाओं से संयुक्त, प्रजा के रक्षण में लगा हुआ श्रेणिक राजा था।।५८।।

शोभा से युक्त अथवा अन्तरंग- बहिरंग लक्ष्मी से विभूषित जिनेन्द्र भगवान के चरणकमलों का सेवन करने में एक मात्र भ्रमर, उसकी आत्मा सम्यक्त्वरूपी रत्न से पवित्र थी और वह भावी तीर्थकरों में अग्रणी था।।५९।।

वह महामण्डलेश्वर राजा राजाओं से सेवित, दाता, भोक्ता, विचार को जानने वाला तथा वादियों के समूह को धारण करता था।।६०।।

वह सप्तांग राज्य से सम्पन्न, तीन प्रकार की शक्तियों से सुशोभित, छः प्रकार के शत्रुओं का विजेता तथा पंचांग मन्त्र में उसकी बुद्धि प्रवीण थी।।६१।।

उसके राज्य में दो जीभें सर्पों में ही थी, प्रजाजनों में नहीं थीं। स्त्री के कटिभाग में ही कृशता थी, प्रजा कृश नही थीं। निर्धनता तपस्वियों में थी, प्रजा धनरहित नहीं थी।।६२।।

उसके राज्य की समस्त प्रजा सद्धर्म में तत्पर हुई। लोकिक वाक्य सच ही है कि "जैसा राजा होता है, वैसी ही प्रजा होती है"।।६३।।

उस राजा के रक्षा कार्य करने पर कराभिघात अर्थात् किरणों का आघात सूर्य में ही था अन्यत्र कराभिघात अर्थात टेक्स का अभिघात नही था, अतः समस्त लोक शोक रहित था।।६४।।

उसकी कमललोचना चेलना नामक धर्मपरायणा रानी थी। वह पतिव्रत रूप धर्म की मानों पताका थी।।६५।।

उसके रूप के सदृश न तो उर्वशी थी और न तिलोत्तमा। चूँकि वह आद्वितीय आकृति थी, अतः गृहदीपिका के समान सुशोभित होती थी।।६६।।

उसी प्रकार उन दोंनों के जिनेन्द्र के द्वारा कहे हुए धर्म - कर्म में लगे रहने पर वारिषेण आदि धर्म प्रेमी पुत्र हुए।।६७।।

प्रायः कर पृथ्वी पर अच्छे कुल में उत्पत्ति पवित्र होती है अथवा चमकदार द्युति वाला मणि शुद्ध रत्नाकर से ही उत्पन्न होता है।।६८।।

(समवशरण वर्णन)

इस प्रकार उस राजा के उत्कृष्ट राज्य करते रहने पर कदाचित पुण्ययोग से विपुलाचल के मस्तक पर ।।६९।।

चौंतीस महा आश्चर्य (अतिशय) और (अष्ट) प्रातिहार्यों से विभूषित परम उदय वाले वीरनाथ विहार करते हुए आए।।७०।।

उन वर्द्धमान के प्रभाव से उस क्षण समस्त फलहीन वृक्ष फल से हरे भरे हो गए।।७१।।

अथवा जिनेन्द्र भगवान के आगमन से सन्तुष्ट होकर आम्र, जम्बीर का वृक्ष (मरूवक वृक्ष), नारंगी›, नारियल आदि के वृक्ष छाया और फल युक्त हो गए।।७२।।

समस्त निर्जल सरोवर सजल हो गए। वन में शीघ्र प्रज्वलित होने

वाली अग्नि शान्त हो गई।।७३।।

क्रूर सिंहादिक भी वैर छोड कर सुशोभित हुए अथवा दयारस से सुशोभित, प्रशान्त सज्जन हो गए।।७४।।

मृगी प्रसन्नता से सिंह के बच्चों का, गायें व्याघ्री के शिशुओं का, मयूरी सर्प के बच्चों का प्रीतिपूर्वक पुत्रों के समान स्पर्श करने लगीं।।७५।।

अन्य विरोधी भैंस, घोडे आदि पशु भी श्रावक हो गए। भीलादि की तो बात ही क्या?।।७६।।

सत्य है कि समस्त प्राणिंयों के हितकर जिनेन्द्र भगवान् के आगमन होने पर परम आनन्द को देने वाला क्या आश्चर्य नहीं होता है अर्थात् सभी आश्चर्य होते हैं।।७७।।

इस प्रकार जिनराज के प्रभाव को देखकर सन्तुष्ट वनपाल ने फलादि लाकर।।७८।।

शीघ्र ही उस नगर में आकर उन श्रेणिक प्रभु को नमस्कार किया और उस भेंट को आगे रखकर सुखदायक वचन बोला।।७९।।

हे राजन्! आपके पुण्य से केवलज्ञान रूपी सूर्य श्री महावीर स्वामी श्री विपुलाचल पर आए हैं।।८०।।

उस बात को सुनकर परम आनन्द से भरे हुए राजा ने उसे महादान देकर और उस दिशा में उठकर ।।८१।।

शीघ्र ही सात कदम चल कर परोक्ष में वन्दना कर ''हे वीर, वर्द्धमान जिनेश्वर ! तुम्हारी जय हो'', ऐसा कहा।।८२।।

प्रमोदपूर्वक आनन्ददायिनी भेरी बजवाकर हाथी, घोड़े, रथ समूह और पदाति लोगों के साथ।।८३।।

अपने योग्य यान पर चढ़कर छत्रादिक विभूतियों के साथ श्री महावीर भगवान की वन्दना करने के लिए श्रेणिक प्रसन्नतापूर्वक चला ।।८४।।

तथा उस भेरी को सुनकर समस्त भव्य जन पूजा द्रव्य को लेकर स्त्री सहित शीघ्र निकले।।८५।।

जो जिन भक्ति परायण धार्मिक भव्य होते हैं, वे धर्म कार्यों में परम

आदर से युक्त हो जाते हैं।।८६।।

इस प्रकार भव्य लोगों को आगे किए हुए भेरी तथा मृदंग के गंभीर नाद से गर्जित दिशाओं रूप तट होते हुए उस राजा श्रेणिक ने ।।८६।।

देवेन्द्र अथवा असुरों के साथ उन्नत विपुलाचल पर चढकर विभु के समवशरणादि को अत्यधिक रूप से देखा।।८८।।

उसे देखकर श्रेणिक चित्त में सन्तुष्ट हुआ, जैसे कैलाश पर्वत पर वृषभनाथ के समवशरण को देखकर भरतेश्वर सन्तुष्ट हुआ था।।८९।।

चारों दिशाओं में ऊँचे महान मानस्तम्भ से युक्त जिनके दर्शन मात्र से मिथ्या दृष्टि लोग मान कषायछोड़ देते हैं।।९०।।

उस समवशरण की समस्त दिशाओं में सोलह स्वच्छ जल से पूर्ण सज्जनों के चित्त के समान (निर्मल) तालाब थे।।९१।।

रत्नों के तटों से सुशोभित जल से भरी हुई सज्जनों के चरित्र के समान सन्ताप को नष्ट करने वाली खाई को देखकर वह हर्षित हुआ।।९२।।

चमेली, चम्पा, पुन्नाग तथा पारिजात आदि से उत्पन्न नाना प्रकार के पुष्पों से युक्त मनोहर पुष्प वाटिका को।।९३।।

चार गोपुरों से युक्त स्वर्ण के ऊँचे प्राकार को अथवा मानुषोत्तर पर्वत को देखकर वे प्रभु प्रीति को प्राप्त हुए।।९४।।

देवों आदि से देखने योग्य, रम्य दो नाट्यशालाओं को, देव देवांगनाओं के गीत, नृत्य तथा वादित्र से शोभित।।९५।।

अशोक, आम्र सप्तवर्ण तथा चम्पा नामक नाना प्रकार के सैकड़ों वृक्षों से व्याप्त चार वनों को।।९६।।

चार गोपुरों से युक्त स्वर्ण वेदिका को अथवा समवशरण रूप लक्ष्मी की मेखला को उसने देखा।।९७।।

रत्नमय तोरणों वाले गोपुरों से विशाल रजत भवन को मानों वह जिनेन्द्र भगवान के यश की राशि हो, देखकर वह सन्तुष्ट हुआ।।९९।।

सार रूप सुख को देने वाले कल्पवृक्षों के वन को चारों ओर से देखकर सन्तुष्ट हुए राजा का हर्ष हृदय में समा नहीं सका।।१००।।

देवादि के विश्राम के लिए स्वर्ण तथा रत्न से निर्मित शुभ नाना भवनों के समूह को देखकर राजा हर्षित हुआ।।१०१।।

रत्नतोरण से संयुक्त, सुरों और असुरों से पूजित, पद्मराग मणि से निर्मित, जिनेन्द्र प्रतिमाओं से युक्त छत्तीस सुमनोहर महास्तूपों की राजा ने सज्जनों सहित अनेक वस्तुओं से पूजा की।।१०२-१०३।।

अनन्तर मार्ग को पार कर चार गोपुरों से संयुक्त, मंगल निधानों से युक्त स्फटिक निर्मित उन्नत भवनों के बीच सोलह ऊँची दीवालों से शोभित, बारह प्रकोष्ठों वाले सभा स्थान की । इस प्रकार श्री महावीर प्रभु के समवशरण की महाप्रीति से तीन प्रदक्षिणा देकर श्रेणिक सन्तुष्ट हुआ।।१०४-१०५ -१०६।।

वहाँ तीन मेखलाओं वाले पीठ पर मेरू के शिखर के समान ऊँचे, स्वर्ण और रत्नों से निर्मित अनुत्तर सिंहासन पर चार अंगुल छोडकर स्थित वीर जिनेश्वर को निधान (धर्म के) के समान देखकर राजा परम सन्तुष्ट हुआ।।१०७-१०८।।

वे देवाधिदेव (महावीर) चौंसठ महादिव्य चामरों को लिए हुए देवों से युक्त थे। वे ऐसे लग रहे थे, मानों विशुद्ध झरनों से युक्त सुमेरू पर्वत हों।।१०९।।

वे समस्त शोक को नष्ट करने वाले थे, महान् अशोक वृक्ष का आश्रय लिये हुए, वे ऐसे लग रहे थे मानों सारमेघ से युक्त स्वर्णमय आभा वाले पर्वत हों।।११०।।

दिशाओं का समूह नाना सुगन्धित पुष्पों के समूह से सुगन्धीकृत था। इन्द्रादिक के द्वारा अपने हाथ से छोडी हुई पुष्पवृष्टि से वे सुशोभित थे।।१११।।

करोडों सूर्य से स्पर्द्धा करने वाले शरीर के भामण्डल से युक्त थे। उस भामण्डल में भव्य जीव अपने सात जन्मों को देख लेते हैं।।११२।।

वहाँ करोडों दुन्दुभियों का घोष हो रहा था। उन्होने मोहरूपी शत्रु पर विजय प्राप्त की थी। ऐसे जिनप्रभु को अत्यधिक रूप से देखा।।११३।।

अथवा मोतियों की माला से युक्त सुन्दर छत्रत्रय से वे ऐसे लग रहे थे मानों तीन होकर सेवा के लिए आए हुए चन्द्रमा से युक्त हों।।११४।।

सुर, असुर और मनुष्यादि के चित्त में सन्तोष उत्पन्न करने वाली संसार के लिए हितकारी दिव्यध्वनि तत्त्व का द्योतन कर रही थी।।११५।।

वे अनन्त ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुख से युक्त थे, गुणों की खान थे, इन्द्र, नागेन्द्र, चन्द्र, सूर्य तथा राजाओं आदि से अर्चित थे।।११६।।

इत्यादि केवलज्ञान से उत्पन्न विभूतियों से सुशोभित जिनेन्द्र देव को देखकर मगधराज श्रेणिक आनन्द से युक्त हुए।।११७।।

(वीर जिन स्तुति)

"हे तीनों लोकों के पूज्य, संसार के हितैषी महावीर ! तुम्हारी जय हो।" इस प्रकार जयघोषों से पुनः पुनः नमस्कार कर।।११८।।

विशिष्ट जल, गन्ध, अक्षतादि अष्ट महाद्रव्यों से, महान् प्रीति से जिन चरण कमलद्वय की पूजा कर।।११९।।

भक्तिपूर्वक भली-भांति स्तुति की। भव्यों की ऐसी ही गति होती है जो कि उनके द्वारा सुपुज्यों की सुखकारी उत्तम पूजा की जाती है।।१२०।।

हे तीनों लोकों के नाथ! तुम्हारी जय हो, हे तीनों लोकों के गुरू! तुम्हारी जय हो। परम आनन्द के देने में दक्ष! क्षमानिधि ! तुम्हारी जय हो।।१२१।।

हे वीतराग ! तुम्हें नमस्कार हो, हे सन्मति ! तुम्हें सदा नमस्कार हों। हे महावीर, वीरनाथ, जगत्प्रभ ! तुम्हें नमस्कार हो।।१२२।।

हे गुणों के सागर, वर्द्धमान जिनेश, प्रकाशक मार्तण्ड, तत्त्व विश्वभाषक महति आदि ज्ञायक महावीर ! तुम्हें नमस्कार हो।।१२३।।

रत्नत्रय रूप कमल लक्ष्मी के विकास के लिए सूर्य! घातिकर्मो का विनाश करने वाले स्याद्वादवादी ! तुम्हें नमस्कार हो।।१२४।।

तीनों लोकों के भव्यों को तारने वाले, मोक्षमयी! तुम्हें नमस्कार हो। काम, क्रोध रूपी अग्नि को बुझाने वाले धर्मनाथ! तुम्हें नमस्कार हो।।१२५।।

स्वर्ग, मोक्ष के विस्तीर्ण सुख के कल्पवृक्ष स्वरूप! तुम्हें नमस्कार हो।

संसार रूपी समुद्र के सेतुस्वरूप हे सिद्ध! बुद्ध! तुम्हें नमस्कार हो।।१२६।।

हे स्वामिन्! आपके विशुद्ध, पार रहित अनन्त गुण हैं, हे देव! मुझ जैसा अल्पबुद्धि कौन तुम्हारा स्तवन करने में समर्थ है? अर्थात कोई नहीं।।१२७।।

तथापि शोभा से युक्त सारस्वरूप आपके चरण कमलद्वय में मेरी भुक्ति और मुक्ति को प्रदान करने वाली, सुखदायिनी भक्ति हो''।।१२८।।

इस प्रकार श्री जिनाधीश, केवलज्ञानसूर्य आप्त की नमस्कारों के समूह से स्तुति करके नमस्कार कर वह बुद्धिमान मनुष्यों के कोठे में बैठ गया।।१२९।।

सम्यक् ज्ञानमय शरीर वाले गौतमादि गणाधीशों को नमस्कार कर वह चैतन्य मूर्ति प्रेम और आनन्द से भर गया।।१३०।।

जिन्होंने मिथ्यात्व रूपी अन्धकार को ध्वस्त कर दिया है, जो विशद गुणों के समुद्र हैं, स्वर्ग तथा मोक्ष के एक मात्र मार्ग हैं, जो सैकडों इन्द्रों से सेवित हैं, भव्य कमलों के समूह के लिये सूर्य स्वरूप हैं, समस्त पापों का हरण करने वाले हैं तथा मुक्ति रूपी साम्राज्य के कर्ता हैं, वे जिनवीर जयशील हों।।१३१।।

इस प्रकार श्री सुदर्शन चरित्र में पंचनमस्कार माहात्म्य प्रदर्शक मुमुक्षु श्री विद्यानन्दि रचित श्री महावीर तीर्थंकर परमदेवसमागम का वर्णन करने वाला प्रथम अधिकार समाप्त हुआ।

द्वितीयोऽधिकार:

मंगलाचरण

संसार रूपी कमल के हेतु सूर्य सम श्री जिनेश्वर जयशील हों, वे केवलज्ञान रूपी साम्राज्य से युक्त हैं तथा उन्होंने लोंगों के समूह को सम्बोधित किया है।।१।। (धर्म का स्वरूप)

अनन्तर श्री श्रेणिक राजा ने विनय से मस्तक झुका कर श्री गौतम देव को नमस्कार कर आदरपूर्वक धर्म को पूछा।।२।।

अनन्तर सत्कृपा के सागर गणनायक गौतम बोले। प्राणियों पर कृपा करना उनका स्वभाव है।।३।।

''हे भावि तीर्थकरों में अग्रणी (प्रथम) श्रेणिक! तुम स्पष्ट रूप से सुनों। वस्तु का स्वभाव धर्म है। वह चेतन और अचेतन दो लक्षण वाला है।।४।।

जिनेश्वर ने कहा है कि धर्म क्षमादि दस रूप है, रत्नत्रयात्मक है और जीवों की रक्षा करना धर्म है।।५।।

निश्चय से जिनोक्त सप्त तत्वों का श्रद्धान करना यथार्थ रूप से सम्यग्दर्शन जानना चाहिए जो कि संसार परिभ्रमण का नाश करने वाला है।।६।।

सर्वज्ञ देव के द्वारा कहे हुए द्वादशांग› को ही ज्ञान जानों। यह ज्ञान जगत्पूज्य है और विरोधरहित है।।७।।

मुनि और श्रावक के भेद से चारित्र दो प्रकार का कहा गया है। मुनि का चारित्र महाव्रत और श्रावक का चारित्र अणुव्रत रूप होता है। यह मद रहित और सुगति को प्रदान करने वाला होता है।।८।।

मन, वचन, काय, तीन प्रकार से हिंसादि पांच पापों का त्याग करना मूल भेद की अपेक्षा मुनियों का महाव्रत है।।९।।

उस चारित्र के मूल और उत्तर गुण अनेक होते हैं, जिन गुणों से वे मुनि स्वर्ग और मोक्ष से उत्पन्न सुख को प्राप्त होते हैं।।१०।।

हे राजा श्रेणिक! तुम श्रावकों के चारित्र को सुनों! सम्यक्त्व पूर्वक

विद्वानों को नित्य ही आदि में अष्ट मूलगुणों का पालन करना चाहिए। आठ मूलगुणों से विशुद्ध होना स्वर्ग लक्ष्मी के लिए होता है।

चर्ममिश्रित हींग अथवा हींग से बने पदार्थ तथा जलादिक छोड़ना चाहिए।।११-१२।।

नरक प्रदान करने वाले सप्त व्यसन विशेष रूप से छोड़ देना चाहिए। जिनसे इस संसार में बड़े लोग भी क्षय को प्राप्त हुए।।१३।।

अच्छी बुद्धि वाले पुरूषों का संकल्प पूर्वक सदा त्रस जीवों की रक्षा करना पुण्य है। विद्वानों को अस्तेय वाक्य छोड़ देना चाहिए, क्योंकि यह निर्दयता का कारण बनता है।।१४।।

अदत्तादान का त्याग करना भव्य जीवों को सम्पत्ति प्रदान करने वाला होता है। सुगति रूपी लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए अपनी स्त्री में नित्य संन्तोष करना चाहिए।।१५।।

समस्त गृहस्थों को समस्त परिग्रहों की संख्या निर्धारित करना चाहिए, जो कि सन्तोषकारिणी होती है, जिस प्रकार कि सूर्य की प्रभा कमलिनी के लिए सन्तोषकारिणी होती है।१६।।

सुखार्थी भव्यों को नित्य रात्रिभोजन का त्याग करना चाहिए। यह श्रावकों का मुख्य धर्म है जिस प्रकार इन्द्रियों में नेत्र मुख्य हैं।।१७।।

श्रेष्ठ विद्वानों को नित्य प्रमाद छोड़कर उत्तम वस्त्र से शुभ लक्ष्मी की प्राप्ति हेतु जल छानने का प्रयत्न करना चाहिए।।१८।।

गुणव्रत तीन प्रकार का होता है- १. दिग्व्रत २. देशव्रत और ३. अनर्थदण्डविरति व्रत। भव्यों को प्रयत्न पूर्वक इनका पालन करना चाहिए, यह सुगति को प्रदान करने वाला होता है।।१९।।

कन्दमूल तथा पत्र शाकादि का सम्मिश्रण जिनों ने त्यागने योग्य कहा है, उसका विद्वानों को सर्वथा त्याग करना चाहिए।।२०।।

चार शिक्षाव्रत श्रावकों के लिए हितकारी हैं। सामायिक व्रत पूर्वक जिन प्रतिमा और पंच परमेष्ठी की स्तुति महा धर्मानुरागी महाभव्यों को तीनों सन्ध्याओं में सुखपूर्वक करना चाहिए।।२१-२२।।

अष्टमी और चतुदर्शी को प्रोषध किया जाता है। यह कर्मों की निर्जरा का हेतु और महान् अभ्युदय प्रदान करने वाला है।।२३।।

भोगोपभोग की वस्तुऐं, आहार, वस्त्रादिक की संख्या (निश्चित करना) सुश्रावकों के लिए सन्तोषकारिणी कही गई है।।२४।।

सुख को चाहने वालों को उत्तम, मध्यम, और जघन्य तीन प्रकार के पात्रों को आहार, अभय, भैषज्य और शास्त्र से चार प्रकार के दान देना चाहिए।।२५।।

जो अत्यधिक रूप से पाँच महाव्रत, तीन मनोहर गुप्तियाँ तथा पाँच समितियों का पालन करता है, वह श्रेष्ठ (उत्तम) पात्र है।।२६।।

जो दान, पूजादि में तत्पर, व्रतों से मण्डित जो सम्यग्दृष्टि श्रावक, गुरू का भक्त है, वह मध्यम पात्र है।।२७।।

केवली प्रणीत दर्शन और जिनधर्म में महारूचि रखता है, मिथ्यात्व रूपी विष को जिसने छोड़ दिया है, वह बुद्धिमान् जघन्य पात्र है।।२८।।

इस प्रकार संसार में जिन भव्यों ने प्रीतिपूर्वक तीन प्रकार के पात्रों के लिए चार प्रकार का दान दिया है, उन्होंने धर्म रूपी वृक्ष का सिंचन किया है।।२९।।

दयालुओं को दीन, अन्धे और बधिरादि याचकों को महोत्सव में कारूण्य नामक दान देना चाहिए।।३०।।

जैन पण्डितों ने त्याग, दान और पूजा कही है। सुश्रावक जैनों को भक्तिपूर्वक शुभ जैन भवन बनवाकर तथा पाप नाशक जिनेन्द्र प्रतिमा शास्त्र के अनुसार पंचकल्याणक में कही गई विधि के अनुसार प्रतिष्ठापित कर स्वर्ग व मोक्षरूपी लक्ष्मी की प्राप्ति के निमित महाभव्यों को विशिष्ट दधि आदि के द्वारा सुख कारक महा-अभिषेक करके विशिष्ट दूध, जल आदि अष्टमहा द्रव्यों से नित्य पूजा करना चाहिए तथा दुर्गति का विनाश करने के लिए सिद्ध क्षेत्रों की यात्रा करना चाहिए।।३१-३२-३३-३४!!

और जिनेन्द्रों की सुखप्रद भलीभांति स्तुति कर एक-सौ आठ बार जाप देना चाहिए। यह सैकडों सुखों कों प्रदान करने वाली कहीं गई है।।३५।।

३५ अक्षरों वाला यह णमोकार मन्त्र तीनों लोकों में पूज्य है और पाप संताप रूपी दावाग्नि को शमन करने के लिए मेघ है।।३६।।

सुख, दुःख, घर, जंगल, व्याधि, राजकुल तथा जल में , सिंह, व्याघ्र, क्रूर शत्रु, सर्प तथा अग्नि का भय होने पर।।३७।।

बुद्धिमान् को समस्त शान्ति को लाने वाले इस मन्त्र का ध्यान करना चाहिए। यह बात उचित ही है कि सूर्य का उद्योत होने पर समस्त अन्धकार भाग जाता है।।३८।।

तथा गुरू के उपदेश से पंच परमेष्ठियों का सोलह आदि अक्षरों वाले मन्त्र का समूह सुख का साधक जानना चाहिए।।३९।।

शुद्ध स्फटिक के समान शुभ जिनेन्द्र प्रतिमा का सम्यग्यदृष्टि को सदा ध्यान करना चाहिए। यह समस्त पापों का नाश करने वाला है।।४०।।

कहा भी है- आप्तस्यासंनिधानेऽपि, पुण्यायाकृतिपूजनम् ।
तार्क्षमुद्रा न किं कुर्याद्, विष - सामर्थ्य - सूदनम् ।।४१ ।।

आप्त की समीपता न होने पर भी मूर्ति पुण्य के लिए होती है। क्या गरूड की मुद्रा विष के सामर्थ्य को नष्ट नहीं करती है?।।४१।।

बुद्धिमान् व्यक्तियों को जिस प्रकार जिन देव की पूजा करना चाहिए उसी प्रकार जिनोपदिष्ट ज्ञान (शास्त्र) गुरू के चरणकमल तथा पवित्र सिद्ध - चक्रादि की पूजा करना चाहिए।।४२।।

पूज्य, पूजा के क्रम से ही भव्य पूज्यतम होता है। अतः सुखार्थी भव्यों के द्वारा पूज्य की पूजा का उल्लंधन नही किया जाता है।।४३।।

जिस प्रकार पर्वतों में मेरू, समुद्रों में क्षीरसागर का महत्व होता है, उसी प्रकार साधर्मियों में परोपकारी का अत्यधिक महत्व होता है।।४४।।

शल्य रहित लोगों को सद्धर्म की वृद्धि के लिए प्रीतिपूर्वक दान मानादि से सदा साधर्मियों के प्रति वात्सल्य रखना चाहिए।।४५।।

तथा जैन धर्मानुयायी सुश्रावकों को नित्य रूप से गुरूओं की सारस्वरूप सेवा कर शास्त्र श्रवण करना चाहिए।।४६।।

इस प्रकार श्रीमज्जिनेन्द्र द्वारा कथित सप्तक्षेत्रों का बुद्धिरूपी धन

वाले व्यक्तियों को नित्य अत्यधिक रूप से अर्पण करना चाहिए क्योंकि, ये सुख की खान है।।४७।।

अन्त में तत्व को जानने वाले लोगों में श्रेष्ठ भव्य श्रावकों के द्वारा मोह और आसक्ति का त्याग कर सन्यास धारण किया जाता है।।४८।।

भक्त लोगों को परमेष्ठियों की अनन्य शरण होकर, चित्त में अनुत्तर रत्नत्रय की शरण लेकर परमार्थ रूप से शुद्ध चैतन्य स्वभाव वाला "मै कौन हूँ?" इत्यादि तत्व संकल्पों के साथ संन्यास की उत्तम विधि करना चाहिए।।४९-५०।।

उसी प्रकार हे बुद्धिमान् राजा श्रेणिक! मेरे वचन सुनों। जिनोक्त सप्ततत्वों का लक्षण मैं तुमसे कहता हूँ।।५१।।

"सात तत्वों में जीवतत्व प्रथम है, जो कि सदा अनादिनिधन है। वह जीव भी निश्चित रूप से जिनों ने चेतना लक्षण वाला कहा है।।५२।।

विद्वानों ने उसे दो उपयोगों से युक्त, स्वदेहपरिणाम वाला, कर्ता, भोक्ता और अमूर्त्त (स्वभाव से) कहा है।।५३।।

जीव दो प्रकार का जानना चाहिए- १.मुक्त, २.संसारी। सब कर्मों से रहित मुक्त, सिद्ध और निरंजन हैं।।५४।।

वह शरीर रहित, निराबाध, निर्मल और अनन्त सुख वाले हैं, वह विशिष्ट आठ गुणों से युक्त हैं और तीनों लोकों के शिखर पर स्थित है।।५५।।

वह साकार होने पर भी निराकार हैं, निष्ठित अर्थ वाले हैं, समस्त जनों के द्वारा स्तुत्य हैं। इनके स्मरण मात्र से भव्य जीव उसके पद को प्राप्त हो जाते हैं।।५६।।

संसारी जीव दो प्रकार के हैं- १. भव्य और २. अभव्य। जिस प्रकार स्वर्ण पाषाण स्वर्ण बनने के योग्य होता है, उसी प्रकार भव्य रत्नत्रय प्राप्त कर निर्वाण के योग्य है।।५७।।

मुनियों ने अभव्य को अन्ध पाषाण के समान माना है। वह

अनन्तानन्त काल में भी संसार को नहीं छोड़ता है।।५८।।

कोई भव्य कर्मठ अपने कर्मों से भव्यराशि के साथ संसार में सदा शुभ और अशुभ कर्मों से सुख और दुःख भोगते हुए कालादि लब्धि पाकर जिनेन्द्रों के द्वारा कथित (निश्चय और व्यवहार) दो प्रकार के सम्यक् रत्नत्रय की आराधना करके, निर्मल शुक्लध्यान से कर्मों का नाश कर शाश्वत उत्तम मोक्ष को चले गए हैं, चले जा रहे हैं और चले जायेगें।।५९,६०,६१।।

हे राजन! तुम अजीव पुद्गल द्रव्य को जानो, जो कि पृथ्वी आदि छः भेदों के रूप में आगमन के अनुसार निरूपित है।।६२।।

कहा भी है- अइथूल थूल थूलं, थूलसुहुमं च सुहुमथूल च ।
सुहुमं च सुहुमसुहुमं, धराइयं होइ छब्भेयं ।।६३ ।।
पुढवी जलं च छाया, चउरिंदिय विसय कम्म परमाणू ।
छव्विह भेयं भणियं, पुग्गल दव्वं जिणिंदेहिं।।६४ ।।

जिनेन्द्र भगवान ने छह प्रकार का पुद्गल द्रव्य कहा है- अतिस्थूल, स्थूल, स्थूल सूक्ष्म, सूक्ष स्थूल, सूक्ष्म इनके उदाहरण क्रमशः पृथ्वी, जल, छाया, चतुरिन्द्रिय, कर्म तथा परमाणु हैं।।६३,६४।।

आठ स्पर्शादि के भेद से पुद्गल बीस प्रकार का होता है तथा विभाग रूप से अनेक प्रकार का होता है।।६५।।

पाँच प्रकार का मिथ्यात्व, बारह प्रकार की अविरति, पच्चीस प्रकार की कषाय तथा पन्द्रह प्रकार के योगों से।।६६।।

कहा भी है- मिच्छत्तं अविरमणं कसाय जोग य आसवा होंति ।
पण वारस पणवीसा, पण्णरसा होंति हुंति तब्भेया ।।६७।।

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये आस्रव नित्य होता है। उस आस्रव के भेद पाँच, बारह, पच्चीस तथा पन्द्रह हैं।।६७।।

प्रमाद होने पर प्राणियों के कर्मों का आस्रव नित्य होता है। जिस प्रकार टूटी हुई कुण्डी में नित्य जल भरना विनाशकारी है।।६८।।

कषाय के वश जीव नित्य अनन्त कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है। वह बन्ध चार प्रकार का होता है।।६९।।

१. प्रकृति बन्ध २. स्थिति बन्ध ३. अनुभाग बन्ध ४. प्रदेश बन्ध।।७०।।

कहा भी है-

पयडि - ट्ठिदि - अणुभाग - प्पदेसभेदा दु चदुविहो बंधो ।
जोगा पयडि पदेसा, ठिदि - अणुभागा कसायदो हुंति ।।

प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेश इस प्रकार चार तरह बन्ध होता है। योग से प्रकृति और प्रदेशबन्ध तथा कषाय से स्थिति और अनुभाग बन्ध होते हैं।।७१।।

व्रत, समिति, गुप्ति आदि से, अनुप्रेक्षाओं के प्रकृष्ट चिन्तन से, परिषहों के जय से और चारित्र से आस्रव का जो घातक है, वह संवर है।।७२।।

कर्मों का एकदेश क्षय होना निर्जरा मानी गई है। वह सकाम निर्जरा अथवा सविपाक निर्जरा और अकाम निर्जरा के भेद से दो प्रकार की कही गई है।।७३।।

अकाम निर्जरा मिथ्यादृष्टि व अज्ञानी जीव के कुतप से होती है।

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा कहे हुए तपोयोग से मुनि आदि के द्वारा जो बलात् कर्मों का हरण किया जाता है, उसे विद्वानों ने अविपाक निर्जरा माना है।।७४।।

संसार में भ्रमण करने वाले जीवों की दुःखादिक से स्वंय कर्मों की निर्जरा होती है, वह सविपाक नामक निर्जरा है।।७५।।

सकाम और सविपाक दोनों शब्द एकार्चवाची हैं, किन्तु अकाम और अविपाक भिन्नार्थक हैं।

भव्य जीवों का समस्त कर्मों के नाश का कारण रूप जो परिणाम है, उसे जिनन्द्रों ने भावमोक्ष माना है।।७६।।

जिनभाषित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र से शुक्लध्यान के प्रभाव से समस्त कर्मों का जो क्षय होना है।।७७।।

वह द्रव्यमोक्ष जानना चाहिए, वह अनन्तानन्त सुख को देने वाला है।

शाश्वत, परम उत्कृष्ट, विशिष्ट आठ गुणों का सागर है।।७८।।

मुक्ति क्षेत्र जिन्होंने कहा है वह तीनों लोकों के शिखर पर प्राग्भार नामक शिला के मध्य, छत्राकार और मनोहर रूप में स्थित है।।७९।।

वह पैंतालीस लाख योजन विस्तीर्ण है। उसकी सुशोभित निर्मल प्रभा चन्द्रमा की क्रान्ति से स्पर्द्धा करने वाली है।।८०।।

उस पर प्राग्भार नामक पिण्ड आठ योजन विस्तीर्ण हैं। वह ऐसा मालूम पड़ता है मानों विशिष्ट मुद्रिका के मध्य हीरा जड़ा हो।।८१।।

उस पर निश्चित रूप से कुछ कम गव्यूति मंगल को प्रदान करने वाले सिद्ध तनुवात वलय पर स्थित हैं।।८२।।

वे जरा मरण से रहित सिद्ध कर्मों की शान्ति के लिए हों, वे अपने मन में पूजित, वन्दित और समाराधना के योग्य हैं।।८३।।

इन सात तत्वों का श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। यह मोक्ष सुख रूपी वृक्ष का बीज है। उत्तम बुद्धिमानों को इसका पालन करना चाहिए।।८४।।

शुभ भाव पुण्य है, यह स्वर्गादि सुख का साधन है। अशुभ परिणाम पाप है, जो कि नरकादि दुःखों को देने वाला है।।८५।।

इस प्रकार लोकस्थिति से युक्त तत्वार्थ सद्भाव को, जो कि गौतम स्वामी ने कहा था, सुन कर श्रेणिक राजा।।८६।।

विस्तीर्ण बारह सभाओं के भव्यों के साथ सन्तोष को प्राप्त हुआ। जहाँ पर श्री गणधर देव वक्ता हों वहाँ कौन सन्तोष को प्रात नहीं होता?।।८७।।

इस प्रकार श्रीमजिनेन्द्र के द्वारा कहे हुए उत्तम गणधर के द्वारा कथित जीव और अजीव तत्व के लक्षण को सुनकर गुणों की निधि मगधराज श्री श्रेणिक ने भक्तिपूर्वक गुणों की निधि स्वरूप भव्यों के लिए हितकारी

इस प्रकार श्री सुदर्शन चरित्र में पँच नमस्कार माहात्म्य प्रदर्शक मुमुक्षु श्री विद्यानन्दि रचित श्रावकाचार तत्वोपदेश वर्णन करने वाला द्वितीय अधिकार समाप्त हुआ।

तृतीयोऽधिकारः

(सुदर्शन स्वामी का जन्म)

अनन्तर राजा श्रेणिक ने गुरू को नमस्कार कर पुनः अंजलि बाँधकर कहा "हे स्वामी! आप कारण के बिना जगद्बन्धु हैं।।१।।

मेघ, कल्पवृक्ष अथवा दिव्य चिन्तामणि जिस प्रकार परोपकार करने में तत्पर रहते हैं, उसी प्रकार तुम तीनों लोंकों के भव्यों का परोपकार करने में तत्पर हो।।२।।

जो यहाँ पर वीरनाथ के पंचम अन्तकृत् केवली हैं, उन सुदर्शन मुनि का चरित्र मुनियों में उत्तम है।।३।।

श्रीमान की कृपा से उसे मैं सुनना चाहता हूँ। हे देव! करूणा कर उस चरित्र को तुम मुझसे कहने के योग्य हो"।।४।।

उसे सुनकर चार ज्ञान से सुशोभित गणधर देव परम आनन्द देने वाली शुभ वाणी में बोले।।५।।

"हे उत्तम बुद्धि वाले राजन्! सुनों, तीर्थकरों के जन्म से पवित्र परमोदय भरत नाम के क्षेत्र में ।।६।।

सार रूप सम्पत्तियों से भरा हुआ विख्यात अंग›देश है। वह नित्य भव्यजनों से व्याप्त नगर आदि से सुशोभित है।।७।।

जहाँ पर विशिष्ट कही हुई अठारह धान्य की उन्नत राशियाँ सुशोभित होती है मानों वे सज्जनों की पुण्य राशियों हों।।८।।

जहाँ सैकड़ों सुखों को प्रदान करने वाला श्रीमज्जिनेन्द्रों का भुवनों में उत्तम दशलाक्षणिक धर्म नित्य विद्यमान है ।।९।।

जहाँ पर धान्यों की निष्पत्ति का स्थान खल (खलिहान) नाम का हुआ। अन्य कोई परपीडादायक खल पुरूष नहीं हैं।।१०।।

जहाँ पर कज्जल लेखन में और नारियों के लोचनों में है, प्राणियों के कुल गोत्र में कालिमा नहीं है।।१२।।

उपभोग की हुई पुष्प मालाओं में जहाँ म्लानता दिखाई देती है। पूर्व पुण्य के प्रभाव से प्रजाओं के मुखों पर म्लानता नहीं दिखाई देती है।।१३।।

जहाँ पर दण्ड केवल छत्र में है, प्रजा जहाँ की न्यायमार्ग में प्रवृत्त रहती है तथा राजा निर्लोभी है, अतः प्रजाओं में दण्ड शब्द नही है।।१४।।

हस्ति आदि में पाया जाने वाला दमन जहाँ तपस्वियों के तप और इन्द्रियों में ही विद्यमान है। दुष्ट बुद्धि के कारण किसी का दमन नहीं होता है।।१५।।

दोषाकरत्व (रात्रि का करना) चन्द्रमा में है, प्रजा में नहीं जहाँ, बन्धन पुष्प में और अत्यधिक रोक दुर्मनों पर ही है।।१६।।

जहाँ पर मिथ्यात्व को हलाहल के समान जानकर प्रजायें जिन भाषित सद्धर्म का पालन करती हैं।।१७।।

प्रजा पात्रदान, जिनेन्द्रअर्चना, व्रत, गुणोज्वल शील, उपवास पूर्वक अत्यधिक रूप से धर्म पालन कर जहाँ हित का साधन करती है।।१८।।

जहाँ पर पुष्प और फलों से नम्र, सबको तृप्त करने वाले घने, अच्छे वन सुशोभित होते हैं अथवा भव्यों के पुष्प और फलों से नम्र, सबको तृप्त करने वाले, घने, अच्छे कुल सुशोभित होते हैं।।१९।।

जहाँ पर कमलों के समूह से समन्वित, विस्तीर्ण और ताप को नष्ट करने वाले स्वच्छ जलाशय हैं, उनकी उपमा सज्जनों के मन से दी जा सकती है। सज्जनों के मन भी लक्ष्मी से समन्वित, विस्तीर्ण और ताप को नष्ट करने वाले होते हैं।।२०।।

जहाँ पृथ्वी समस्त धान्यों से भरे हुए और दरिद्रता का विनाश करने वाले खेत अथवा भव्यों के समूह सुशोभित हैं।।२१।।

जहाँ सदा गोल-गोल, विशाल और ताप को हरने वाले तालाब प्रसन्नतापूर्वक सज्जनों के चित्तों के समान सुशोभित होते हैं। सज्जनों के चित्त भी अच्छे आचरण वाले (सुव्रत्त) विशाल और तृषा के ताप को हरण करने वाले होते हैं।।२२।।

जहाँ पर पूर्व पुण्य की कृपा से धन, धान्य और जनों से पूर्ण, जिनधर्म

परायण भव्य रहते हैं।।२३।।

जहाँ पर रूप, सम्पत्ति और गुणों से युक्त नारियाँ अनुत्तर चार प्रकार के (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप-रूप) उत्तम धर्म का आचरण करती हुई सुशोभित होती हैं।।२४।।

जहाँ पर नगर, ग्राम और वनादि में जिनेन्द्र की प्रतिमाओं से युक्त सुमनोहर प्रासाद सुशोभित होते हैं।।२५।।

उन प्रासादों में अनेक भव्यजनों के समूह द्वारा की हुई जय निर्घोष होती रहती है, गीत वादित्र, पूजादि से युक्त सैकड़ों महोत्सव होते रहते हैं।।२६।।

समस्त भव्यों को परम आनन्द देने वाले वे प्रासाद तोरण, ध्वज और मांगलिक स्वर्ण कुम्भ के समूहों से सुशोभित होते हैं।।२७।।

जहाँ पर वनादि में सब जगह ज्ञान लोचन, स्वच्छचित्त मुनीन्द्र तप और ध्यान का उपदेश दिया करते हैं।।२८।।

जहाँ पर बावडी, कूप, और प्याउ पथिकों की उपकारक हैं अथवा यहाँ पर सज्जनों की प्रवृत्तियाँ दान, मान और आसनादि से युक्त हैं।।२९।।

जहाँ पर दानी शक्ति, भक्ति और शुभ उक्तियों वाले हैं।। सचमुच वे ही दातार होते हैं, जो प्रिय वचन बोलते हैं।।३०।।

उस अंग देश के अत्यधिक मध्य में पावन चम्पापुरी नगरी है। जो वासुपूज्य जिनेन्द्र के जन्म से पवित्र हुई थी।।३१।।

जहाँ पर भव्यों के नामों के समुह के समान नाना बड़े-बड़े भवनों का समूह सार रूप सम्पत्ति से भरा हुआ और सुखदायक होकर सुशोभित होता है।।३२।।

जहाँ पर जिनेन्द्र भवन अत्यधिक रूप से कुम्भ और ध्वजाओं के समुह से नित्य समस्त मनुष्यों और देवताओं को मानों पूजा के लिए आमन्त्रित करता है।।३३।।

वे जिनेन्द्रभवन पृथ्वी पर भव्यों को सुख देने वाले मेरू शिखर के समान सार रत्न तथा स्वर्णादि की प्रतिमाओं से सुशोभित है।।३४।।

जहाँ घंटाओं की टटार, बाजों के घोष, भव्य जनों के द्वारा की हुई स्तुतियों तथा पूजोत्सवों से भव्यजनों के मनों को अत्यधिक रूप से हरते हैं।।३५।।

प्राकार, खाई अट्टालिका तथा तोरण आदि से विभूषित जो कुबेर की सुमनोहर पुरी के समान सुशोभित होती है।।३६।।

जो अनेक रत्न, माणिक्य, चन्दन और अगुरू रूप वस्तुओं से तथा रेशमी वस्त्रादि से (कुबेर की) निधियों को भी पराजित करती थी।।३७।।

सम्यक्त्व तथा व्रत से संयुक्त तथा सात सात व्यसनों से दूर जहाँ भव्य पूर्वपुण्य से धन धान्यों से।।३८।।

बडी बड़ी जैनी (जिन तीर्थों की) यात्रा और प्रतिष्ठाओं से तथा पात्रदान और जिनेन्द्र भगवान की अर्चना से अपना हित साधते हैं।।३९।।

जहाँ पर सम्यक्त्व, व्रत, उत्तम वस्त्र, रत्न तथा वेशभूषा से सुशोभित नारियाँ भी रूप से सम्पन्न और सम्पदाओं से मनोहर हैं।।४०।।

जो नगरी सुपात्र और फल से संयुक्त है, दान, पूजादि से मण्डित है तथा जहाँ परोपकार मे तत्पर कल्पलतायें अत्यधिक जयशील हैं।।४१।।

जहाँ पर देवेन्द्र, नागेन्द्र और नरेन्द्रादि से पूजित वासुपूज्य जिन ने जन्म लिया, उस नगरी का कौन वर्णन कर सकता है।।४२।।

उस चम्पापुरी के मध्य प्रजा का हितकारी, प्रताप से शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला धात्री वाहन नामक राजा सुशोभित हुआ था।।४३।।

जिस परम राजा के चरणकमल युगल को नित्य रूप से भ्रमरों के समूह (रूपी प्रजा जन) कमलों के समान चारों ओर से सेवन करते हैं।।४४।।

नीतिशास्त्र को जानने वाला, रूप में कामदेव को जीतने वाला,धर्मवान् वह राजा धन की अपेक्षा कुबेर के समान सुशोभित हुआ था।।४५।।

वह राजविद्याओं में लगा हुआ, सात व्यसनों से रहित, दाता, भोक्ता, प्रजाओं को अभीष्ट, मद रहित, निपुण।।४६।।

सप्तांग राज्य से सम्पन्न, विद्वान्, पंचांग मन्त्र को जानने वाला, छः प्रकार के (काम क्रोधादि)शत्रुओं से रहित तथा (प्रभु, मन्त्र और उत्साह) तीन

शक्तियों से सुशोभित था।।४७।।

उसने जिनभाषित स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, देश, दुर्ग और सेना के आश्रित इस सप्तांग राज्य को प्राप्त किया था।।४८।।

वह सहाय, साधनोपाय, देश तथा कोश का बलावन तथा विपत्ति का प्रतीकार, इस प्रकार पंचांग मंत्र का आश्रय लेता था।।४९।।

काम, क्रोध, मान, लोभ, हर्ष, तथा मद ये राजा के छः प्रकार के अन्तरंग शत्रुओं का समूह होता है।।५०।।

पहली प्रभुशक्ति, दूसरी मंत्रशक्ति तथा तीसरी उत्साह शक्ति, इस प्रकार राजाओं की शुभ तीन शक्तियाँ होती हैं।।५१।।

इत्यादि अत्यधिक सम्पति वाले उस राजा की रूप और लावण्य से मण्डित अभयमती नामक पत्नी थी।।५२।।

जिस प्रकार शची इन्द्र की, रोहिणी चन्द्रमा की तथा सूर्य की रण्णादेवी पत्नी होती है उसी प्रकार उसकी इष्ट प्राणवल्लभा (अभयमती) हुई।।५३।।

वह कामभोग रूपी रस की आधारभूत कूपी, कमल के समान नेत्र वाली, मधुर स्वरा और राजा के चित्तरूपी मृग को बाँधने की रस्सी थी।।५४।।

उसके साथ मन को प्रिय लगने वाला यथेष्ट भोगों को भोगता हुआ वह राजा सुखपूर्वक स्थित था, जिस प्रकार लक्ष्मी के साथ पुरूषोत्तम सुखपूर्वक रहता है।।५५।।

उसका समस्त कार्यों को जानने वाला वृषभदास श्रेष्ठी था। उत्तम सेठ से राजा का राज्य स्थिर होता हैं।।५६।।

वह सेठ श्रीमज्जिनेन्द्र के चरणकमल के सेवन का एकमात्र भ्रमर था। वह सम्यग्दृष्टि, सद्गुरू का भक्त तथा श्रावकाचार में तत्पर था।।५७।।

वह जिनेन्द्र भवन, प्रतिमा, पुस्तकादिक का उद्धार करता था और यथार्थ रूप से चार प्रकार के संघ के प्रति वात्सल्यभाव से युक्त था।।५८।।

इस प्रकार शुद्ध बुद्धिवाला वह श्री जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुए सुख रूपी धान्य को देने वाले अपने चित्तरूपी अमृत की धारा से सबको

सन्तुष्ट करता था।।५६।।

जो भव्य स्वर्ग और मोक्ष के एकमात्र कारण चित्त को रंजित करने वाले जिनेन्द्र भगवान के चरणकमल की सदा पूजा करता था।।६०।।

जो पवित्रात्मा सदा नव पुण्यों से, दाता के सात गुणों से युक्त होकर पात्रदान से पवित्रात्मा होकर मानों दूसरा ही श्रेयांस राजा था।।६१।।

वह श्रेष्ठि याचकों के प्रति दयालु था, दान से सुशोभित था अथवा परम आनन्द का देने वाला कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ था।।६२।।

उसकी रूप और सौभाग्य से युक्त, सतीव्रत की पताका स्वरूप, कुल मन्दिर की दीपिका जिनमती नामक प्रिया थी।।६३।।

श्री जिनेन्द्र भगवान के प्रति उसकी बुद्धि अत्यन्त निर्मल हुई, अतः इसका शुभप्रद जिनमती नाम सार्थक हुआ।।६४।।

संसार को प्रीति उत्पन्न करने वाली जिसकी रूप सम्पदा को देखकर निश्चित रूप से देवांगना निमेष की टिमकार से रहित हुई।।६५।।

वह परम आनन्ददायिनी कल्पलता के समान थी अथवा जिनराज की पूजा से भक्तितत्परा शची थी।।६६।।

जिसने पृथ्वी तल को पवित्र किया है ऐसी श्रावकाचार से पवित्र आत्मा वाली वह दया, क्षमा, रूप, गुण से मुनि की बुद्धि के समान सुशोभित हुई।।६७।।

इस प्रकार अपने पुण्य के परिपाक से श्रेष्ठिनी, गुणशालिनी, सुन्दर आकृति वाली वह सुखपूर्वक महल में सोयी थी।।६८।।

रात्रि के अन्तिम प्रहर में उसने स्वप्न में रम्य सुदर्शन मेरू और दिव्य कल्पवृक्ष प्रीतिपूर्वक देखा।।६९।।

उसने देवताओं के द्वारा सेवन करने योग्य स्वर्गविमान, विस्तीर्ण समुद्र, जलती हुई शुभ अग्नि तथा नष्ट हुए अन्धकार के समूह को देखा।।७०।।

जिन माता के समान उत्तम बुद्धि वाली, सन्तुष्ट हो, प्रातः उठकर, पंच नमस्कार मन्त्र का स्मरण कर प्रातः कालीन क्रियाओं को कर विकसित

मुखकमल वाली होकर वस्त्र और आभूषण को धारण कर सुनम्र हो उसने सुख के सूचक अपने स्वप्नों के विषय में श्रेष्ठी को कहा।।७१-७२।।

श्रेष्ठी वृषभदास उनको सुनकर हर्षित हुए। शुभ को सुनकर पृथ्वी तलपर कौन बुद्धिमान् प्रमोदवान् नही होता है।।७३।।

सेठ ने कहा कि "हे भद्रे! यद्यपि स्वप्न शुभ हैं, फिर भी हम दोनों जिनमन्दिर जाकर ज्ञानी, तत्व-वेदी गुरू (मुनिराज) से पूछें"।।७४।।

अनन्तर बन्धुओं से युक्त उन दोनों ने पूजा द्रव्य से युक्त होकर परम आनन्ददायक जिनेन्द्र भवन जाकर विशिष्ट आठ प्रकार की अर्चनाओं से जिनेन्द्र देव की अत्यधिक पूजा कर, स्तुति कर नमस्कार किया। ठीक ही है, भव्यों की इसी प्रकार बद्धि होती है।।७५-७६।।

अनन्तर वणिक् ने सुगुप्त नामक धर्म देशक मुनीन्द्र से अत्यधिक प्रीति से प्रणाम कर स्वप्नों का फल पूंछा।।७७।।

जब परोपकार में तत्पर ज्ञानी मुनी ने कहा-"हे सेठ! सुनों, गिरीन्द्र के देखने से सुदर्शन नामक तुम्हारे कुल कमल का सूर्य पवित्रात्मा पुत्र होगा। वह चरमशरीरी, महाधीर, विशुद्ध और शील का सागर होगा।।७८-७९।।

कल्पवृक्ष के देखने से पुत्र लक्ष्मी से सुशोभित, दाता, भोक्ता और दयामूर्ति होगा, इसमें संशय नहीं है।।८०।।

यहाँ पर सुरेन्द्र भवन के दर्शन से देवों के द्वारा नत, जगन्मान्य, विचारज्ञ, ज्ञेय से युक्त और परम उदय वाला होगा।।८१।।

समुद्र के देखने से वह सागर से भी अधिक गम्भीर होगा। वह श्रावकाचार से पवित्र आत्मा वाला और जिनभक्ति परायण होगा।।८२।।

अग्नि के दर्शन से सुनिश्चत रूप से तुम्हारा पुत्र गुण का सागर होगा और घातिकर्म रूपी ईंधन को जलाकर केवली होगा"।।८३।।

इत्यादि कथन को सुनकर पत्नी आदि सहित सेठ प्राप्त पुत्र के समान स्वप्नों का फल सुनकर हृदय में सन्तुष्ट हुआ।।८४।।

वह बुद्धिमान् प्रसन्न होकर "मुनिराज का कहा हुआ अन्यथा नहीं होता है" यह विचारता है। सद्गुरूओं का जो विश्वास है, वही सुख का साधन

है।।८५।।

अनन्तर प्रियायुक्त सेठ सज्जनों से घिरा हुआ गुरू को परम प्रीति से नमस्कार कर अपने घर में जाकर विशेष रूप से पवित्र जिनोक्त धर्म तथा पूजादि को नित्य करता हुआ प्रसन्नता और सुखपूर्वक घर में रहा।।८६-८७।।

अनन्तर तब से लेकर वह सेठानी गर्भ के चिन्हों को नित्य धारण करती हुई रत्नगर्भा पृथ्वी के समान सुशोभित हुई।।८८।।

महाशोभा को करने वाली पाण्डुता को उसने मुख में धारण किया। अथवा भाविपुत्र का यश सज्जनों के मन को प्रिय लगता है।।८९।।

तब वह उदर में त्रिवली की रचना को धारण करती थी। वह त्रिवली भावी पुत्र के जरा, जन्म और मृत्यु के नाश का सूचक थी।।९०।।

कमलनयनी होती हुई, वह कार्य आदि में मन्दता का सेवन करने लगी। उसने क्रूर कार्यों को छोड़ दिया और मन्द मन्द बोलने लगी।।९१।।

वह पात्रदान और जिनअर्चा में विशेष दौहृद (दोहलागर्भिणी की इच्छा) धारण करती थी। उस क्षण वह सदा अपने को पुण्यवती अनुभव करती थी।।९२।।

नव मास बीत जाने पर शुभ नक्षत्र और दिन में उस सुन्दरी ने पुण्य के पुंज के समान उत्कृष्ट पुत्र को जन्म दिया ।।९३।।

पौषमास की चतुर्थी को शुक्ल पक्ष में (तेज में सूर्य को अथवा कान्ति में चन्द्रमा को जीतने वाले) पुत्र को उत्पन्न किया।।९४।।

सज्जनों से चारों ओर से घिरे हुए सेठ वृषदास पुत्र जन्मोत्सव पर अत्यधिक रूप से परम आनन्द से भर गए।।९५।।

भुवनोत्तम जिनेन्द्र भवन में गीत, वादित्र और मांगलिक सामग्री से बहुत बडी पूजा और स्नान कराकर उस बुद्धिमान ने प्रसन्न होकर मधुर वाक्यों के साथ सार स्वर्णादि को याचकों को उनकी इच्छा से भी अधिक दान में दिया।।९६-९७।।

कुलांगनाओं ने सम्मानपूर्वक मनोहर महागीत गाकर संसार के लोगों

के मन को प्रिय लगने वाला महोत्सव किया। वहाँ उस समय घर-घर में बाजे, ध्वजा और तोरणों से महोत्सव किया गया। सच ही है, अच्छे पुत्र की प्राप्ति होने पर सज्जन क्या नहीं करते हैं?।।९८-९९।।

सज्जन पुरूष, समस्त बन्धु बांधव और भृत्यादिक भी उस हर्ष, वस्त्र और ताम्बूल आदि के सद्दान मान से सम्मानित हुए।।१००।।

इस प्रकार सेठ ने प्रमोद से नित्य दानादि से कुछ रम्य दिन बिताए। पुनः शोभा से युक्त जिनालय में सज्जनों को आनन्द देने वाले स्नान और पूजा को कर परम आदर से भावी मुक्ति के स्वामी उस पुत्र का चूँकि सब लोगों को उसका दर्शन अच्छा लगा था, अतः स्पष्ट रूप से "सुदर्शन" यह नाम रखा।।१०१,१०२,१०३,।।

कुल, गोत्र, शुभनाम, लक्ष्मी, कीर्ति, यश और सुख पूर्वजन्म के पुण्य से प्राणियों को पृथ्वी तल पर क्या नहीं होता है?।।१०४।।

अतः भव्य जीव जिन कथित पुण्य, सर्व जगह सुख देने वाले दान, पूजा, व्रत, शील को नित्य आदरपूर्वक करें।।१०५।।

पुण्य से दूरतर वस्तुओं का भी समागम होता है। पुण्य के बिना वही वस्तु हथेली से चली जाती है। अतः हे निर्मल बुद्धि वालों! प्रमोद से मोक्ष सुख के बीज जिनेन्द्र कथित पुण्य को करो।।१०६।।

श्री जिनराज के सुन्दर चरणकमलद्वय की पूजा करना पुण्य है। सारस्वरूप अतुल सुपात्र का दान पुण्य है। व्रतों का आरोपण पुण्य है। निर्मल शीलरूपी रत्न का धारण करना और पर्व पर उपवासादि करना पुण्य है, नित्य परोपकार करना पुण्य है। इस पुण्य का हे भव्य लोगों! तुम लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए सेवन करो।।१०७।।

इस प्रकार श्री सुदर्शन चरित्र में पंचनमस्कार प्रदर्शक मुमुक्षु श्री विद्यानन्दि रचित सुदर्शन का जन्म सम्बन्धी व्याख्यान करने वाला तृतीय अधिकार समाप्त हुआ।

चतुर्थोऽधिकारः

(सुदर्शन और मनोरमा विवाह वर्णन)

अनन्तर वह बालक नित्य पिता के मनोहर घर में यथा सुख वृद्धि को प्राप्त करता हुआ स्त्रियों के हाथों लालित होता हुआ, उत्तम प्रीति को उत्पन्न करता हुआ द्वितीया के चन्द्रमा के समान सुशेभित हुआ। सच ही है, सुपुण्य से संयुक्त (पुरूष) किसके लिए सुखदायक नहीं होता है।।१-२।।

वह बालक दिव्य आभरण और उत्तम वस्त्रों से भूषित होकर सुशोभित हुआ। जैसे कोमल कल्पवृक्ष नित्य सज्जनों को आनन्दित करने वाला होता है।।३।।

वह बालक नित्य दिव्य महोत्सवों व पवित्र संबल से युक्त हुआ। संसार में उत्तम बाल सूर्य विशेष रूप से शोभित होता है।।४।।

पुत्र सज्जनों का सामान्य रूप से भी सुख रूप होता है(फिर)। जो भव्य मुक्तिगामी होता है, उसका संसार में क्या वर्णन किया जाय?।।५।।

अत्यधिक पवित्र वह मस्तक पर काले केशों के समूह से सुशोभित हुआ अथवा मानों वह विकास को प्राप्त होता हुआ ऐसा प्रतिभासित होता था जैसे-चम्पा का वृक्ष भौरों से आश्रित हो।।६।।

उसका ललाट स्थान उन्नत, विस्तीर्ण और निर्मल था। वह राजा के पूर्व पुण्य का निवास स्थान हो, इस प्रकार सुशोभित हुआ।।७।।

सुयश की स्थिति को कहने वाली उसकी सुगन्ध के विलास को प्रकट करने वाली तोते की चोंच के समान उन्नत नासिक सुशोभित थी।।८।।

साररूप कमल पत्र के समान उसके दोनों नेत्र सुशोभित होते थे। उसका वर्णन करने में वही समर्थ है, जो आगाजी केवलज्ञान रूपी नेत्र वाला है।।९।। रत्नकुण्डल से शोभित उसके दो कान संलग्न थे। वे सरस्वती और यशोदेवी की क्रीडा के झूले के समान थे।।१०।।

चन्द्रमा नित्य दोषाकर (दोषों की खान, रात्रि की खान, रात्रि को करने वाला) सकलंक और नष्ट हो जाने वाला है। कमल जल का आश्रय लेता (जड़ के आश्रित होता) है। अतः उसका मुख उनको जीत लेता था।।११।।

निर्मल ध्वनि वाला उसका कण्ठ नित्य तीन रेखओं से विराजित होकर सुशोभित होता था। वह लक्ष्मी, विद्या और आयु की प्राप्ति का सूचक था।।१२।।

वह उत्तम बालक कण्ठ में दिव्य मोतियों से सुशोभित हुआ। जिस प्रकार चन्द्रमा तारागणों से सुशोभित होता है।।१३।।

सुखकारी उसके प्रोन्नत भुजस्कन्ध दोनों लोकों की महालक्ष्मी के उत्तम क्रीड़ा पर्वत के समान शोभित थे।।१४।।

सार रूप गंभीरता का स्थान उसका दया से युक्त परम उदय वाला विस्तीर्ण हृदय सार रूप गंभीरता के स्थान लवण सागर को जीतता था।।१५।।

उसके गुणों के समूह का कथन करने वाले चमकीले दिव्य हार से और मोतियों के समूह से उसका हृदय कमल सुशोभित हुआ।।१६।।

घुटनों तक लटकने वाली उसकी दोनों भुजाएं सुशोभित हो रही थीं अथवा वे दान युक्त कल्पवृक्ष की दो दृढ़ डालें थीं।।१७।।

उसके दो हस्तकमल में दो कड़े चमकीले स्वर्ण निर्मित दो उपयोगों के समान सुशोभित हुए।।१८।।

सुप्रमाण नाभि से संयुक्त हृदय समस्त दोषों से रहित निधान स्थान के समान अत्यधिक रूप से सुशोभित होता था।।१९।।

कटीसूत्र से वेष्टिक कटीतट स्वर्णमयी वेदी से युक्त जम्बूद्वीप के स्थल के समान सुदृढ़ रूप में सुशोभित हुआ।।२०।।

शुभ आकार वाला सुदृढ़ उसका जङ्घायुगल कुलगृह के सार रूप उच्च एवं उत्तम स्तम्भद्वय के समान सुशोभित हो रहा था।।२१।।

सार की समूह रूप उसकी दोनों जंघायें कर्मरूपी शत्रुओं को जीतने वाले दो वज्र के गोलों के समान शुभ रूप में सुशोभित हुईं।।२२।।

उसका समस्त भार के समूह को धारण करने वाला जङ्घायुगल था

अथवा अधिक क्या? उसकी शोभा भव्यों के समूह को सुखप्रद थी।।२३।।

अच्छी अँगुलियों से युक्त उसके दो पैर सुशोभित हुए। मानों पत्र सहित कमल को जीत कर लक्षण और श्री विराजित थे।।२४।।

इत्यादिक जगत् के सार स्वरूप, मन को प्रिय लगने वाले उसके रूप का मैं क्या वर्णन करूँ? जो कि यहाँ आगे तीनों लोकों द्वारा पूजित होगा।।२५।।

उसके मुख में सज्जनों को आनन्द देने वाली वाणी उत्पन्न हुई। उस वाणी के विषय में आगे क्या कहा जाय, जो कि समस्त ततवार्थ का कथन करने वाली थी।।२६।।

अनन्तर बुद्धिमान् पिता ने पुत्र को महोत्सवों के साथ जैन उपाध्यक्ष के समीप पढ़ने के लिए रखा।२७।।

विनय से हाथ जोड़े कपिल नामक पुरोहित सुत मित्र के साथ वह पठन क्रिया करते हुए पूर्व पुण्य से समस्त विद्याओं को जानने वाला हो गया। वह भव्य विद्वानों के द्वारा संस्कारित मणि के समान सुशोभित हुआ।।२८-२९।।

वह निर्मल विचित्र अक्षर, उत्तम गणित शास्त्र, तर्क, व्याकरण, काव्य, छन्द, ज्यातिष, वैद्य शास्त्र, सैकड़ों जैन शास्त्र, श्रावकाचार आदि यथाक्रम पढता था।।३०-३१।।

विद्या दोनों लोकों में माता है, विद्या सुख और यश को करने वाली, विद्या नित्य लक्ष्मी को उत्पन्न करने वाली तथा विद्या हितकारी चिन्तामणि है।।३२।।

विद्या रमणीय कल्पवृक्ष है, विद्या काम दुहा गौ है, विद्या लोक में सार रूप धन है, विद्या स्वर्ग और मोक्ष का साधन करने वाली है।।३३।।

अतः भव्य जनों को सदा संसार का हितकारी विद्याभ्यास कष्ट रूप प्रमाद छोड़कर सद्गुरू की चरण सेवा के साथ करना चाहिए।।३४।।

इस प्रकार (वह) विद्या, रूप, गुण,दान, मान और भव्य जनों को अनुरंजित करता हुआ, सज्जनों को प्रिय वह यौवन पाकर अत्यधिक सुशोभित

हुआ।।३५।।

वहाँ पर एक दूसरा बुद्धिमान् सागरदत्त नामक सेठ था। उसकी प्राण वल्लभा सागरसेना पत्नी थी।।३६।।

सेठ सागरदत्त ने कभी प्रमोद में वृषभदास नामक सेठ से प्रीति पूर्वक कहा कि "यदि मेरे पुत्री होगी, तो मैं उस पुत्री को तुम्हारे इस सुदर्शन नामक पुत्र को प्रदान करूँगा, जिससे हम दोनों में सदा प्रीति रहे"।।३७-३८।।

ठीक ही है, सज्जन को निश्चित रूप से गुणों के प्रति प्रेम प्रिय होता है अथवा विद्वानों की वाणी इस लोक और परलोक दोनों जगह सुख को लाने वाली होती है।।३९।।

अनन्तर निकटवर्ती समय में उसकी पत्नी सती सागर सेना ने अपने घर शुभ पुत्री को उत्पन्न किया।।४०।।

उसका नाम मनोरमा था। नव यौवन से मण्डित होकर वह रूप और सौभाग्य से कामदेव की रति के समान सम्पन्न थी।।४१।।

वस्त्र और आभारण से संयुक्त वह सुमनोरमा कोमल कल्पलता के समान तथा लोगों को मोहित करने के लिए औषधि के समान सुशोभित हुई।।४२।।

उसके सार नूपुर से युक्त अँगुलियों सहित दो कोमल पैर थे, जो कि कमल को जीतते थे।।४३।।

सार लक्षण से लक्षित उसकी दोनों जंघायें सुशोभित होती थीं। वे नित्य चरणकमल के नाल की शोभा को धारण कर रही थीं।।४४।।

यौवन के उत्सव पर दर्प से युक्त सुन्दर कामदेव रूपी राजा के ग्रह तोरण पर उसकी दोनों जंघायें केले के स्तम्भ जैसा आचरण करती थीं।।४५।।

इसका नितम्ब स्थल कामदेव की मनोभूमि थी क्योंकि सदैव यहाँ पर निवास करना तीनों लोकों के प्रति आसक्ति की रक्षा करता है।।४६।।

इस दुर्बल उदर वाली का मध्यभाग कृश होने पर भी बलिष्ठ था जो कि त्रिवली से आक्रान्त होने पर भी शोभा को धारण करता था।।४७।।

उसका हृदय स्तनद्वय से युक्त हुआ सुशोभित था। वह कामदेव रूपी

प्रभु का हार सहित अथवा कुम्भ सहित तोरणद्वार था।।४८।।

इसकी सरल, काली रोमराशि अत्यधिक सुशोभित होती थी। वह कामदेव रूपी हाथी के बन्धस्तम्भ के बिम्भ को धारण करती थी।।४९।।

उसकी दोनों भुजायें कोमल, रम्य करपल्लव से युक्त थीं।। उत्तम रत्नकंगन से युक्त वे भुजायें मालतीलता को जीतती थीं।।५०।।

उसका सुन्दर स्वर से युक्त कण्ठ तीन रेखाओं वाला तथा हार से मण्डित था। वह सज्जनों को आनन्द प्रदान करने वाली शंख की शोभा को अत्यधिक रूप से धारण करता था।।५१।।

उसका मुखकमल नाक की कर्णिका से युक्त सुशोभित होता था। सुगन्धित दाँतों के किरण रूप धागे कोमल और शुभ थे।।५२।।

कान की समाप्ति तक भौंहों से युक्त दोनों नेत्र कामदेव के बाण से सुशोभित कामियों के वेधने योग्य चित्रों में सुशोभित होते थे।।५३।।

उसके दोनों कान लक्षणों से सम्पूर्ण दो कुण्डलों से सुन्दर थे। वे उसकी रूप लक्ष्मी को नित्य झुलाने वाली लक्ष्मी के आश्रित थे।।५४।।

उसके निर्मल कपोल गोलाकार को धारण कर रहे थे। वे नित्य संसार के चित्त को हरने वाले चन्द्रमा के समान हो रहे थे।।५५।।

उसका ललाटपट्ट निर्मल तिलक से युक्त था। वह सदा कलंक से युक्त शुभ चन्द्रमा के बिम्ब को जीतता था।।५६।।

उस सुकेशी के कबरीबन्ध की किससे उपमा दी जा सकती है? वह अत्यधिक रूप से कामकाज के कामियों के पाश के समान सुशोभित हो रही थी।।५७।।

इत्यादि रूप सम्पत्ति और वस्त्राभरण से शोभित वह मनोरमा गुणों में देवांगनाओं को भी जीतती थीं।।५८।।

एक बार नगर के मध्य में कामदेव की स्त्री रति के रूप रूपी सर्प का सपेरा सुदर्शन, कपिल नामक मित्र के साथ दिव्य आभरण और वस्त्र को धारण कर भ्रमण कर रहा था। वह याचकों को प्रसन्न करने में समर्थ कल्पवृक्ष था।।५९-६०।।

वह समस्त लक्षणों से सम्पूर्ण था, कलागुण विशारद था, समस्त स्त्री समूह के नेत्र रूपी नीलकमल की लक्ष्मी का पूर्ण चन्द्र था, पुण्य से सम्पूर्ण था, अपनी कान्ति रूपी चाँदनी से युक्त था। अपने सौभाग्य से समस्त लोगों को मोहित करते हुए, कहीं जाते हुए उस सागरदत्त की पुत्री कुलदीपिका मनोरमा को देखकर अत्यन्त विस्मित हुआ। वह वस्त्र और आभूषणों के समूह से मण्डित थी, पवित्र थी, सखियों के साथ पूजा के लिए अपनी लीला से जिनालय को जा रही थी।।६१-६२-६३-६४।।

उसने कपिल से कहा- ''मित्र! क्या यह सुरकन्या है? क्या यह किन्नरी है, रम्भा है या तिलोत्तमा है।।६५।।

क्या रम्य विद्याधरी है अथवा नागेन्द्र कन्या पृथ्वीतल पर आयी है? हे विलक्षण! तुम मुझसे सत्य कहो''।।६६।।

उसे सुनकर बुद्धिमान वह कपिल ब्राह्मण बोला- ''हे मित्र! तुम सुनों, तुमसे सन्देहनाशक वचन बोलता हूँ।।६७।।

यहीं रम्य पत्तन में सेठ सागरदत्त है वह श्री जिनेन्द्र चरणकमल के सेवन का एक मात्र भ्रमर है।।६८।।

श्रावक के आचार से उसकी आत्मा पवित्र है, दान और पूजा से वह सुशोभित है। उसकी सागरसेना नामक मनः प्रिय प्रिया है।।६१।।

सच में, इस लोक में वह गृहवास प्रशंसनीय माना जाता है, जहाँ धर्म, गुण और दान में (पति और पत्नी) दोनों की मेधा सदा शुभ होती है।।७०।।

सार रूप कन्या के गुण से विभूषित उन दोनों की यह पुत्री है। कुल का उद्योतन करने में दीपिका के तुल्य यह पुण्य से यौवन युक्त है।।७१।।

उसे सुनकर कुमार भी मन में अत्यधिक मोहित हुआ अथवा लक्ष्मी को देखकर हरि ही यहाँ कामपीडित हो गया।।७२।।

अपने महल में आकर शय्या पर पड़ गए। काम से पीड़ित होकर चित्त में देव के समान अत्यधिक स्मरण करने लगे।।७३।।

तब उसकी चिन्ता से समस्त कार्यों के साथ अन्न, पान और ताम्बूल को भी भूल गए। ऐसी कामाग्नि को धिक्कार हो।।७४।।

चन्दन, अगर, कपूर, पुष्प रूप शीतोपचार उसकी कामाग्नि रूपी कुण्ड में घी की आहुति हो गये।।७५।।

हे कामिनि! तुम आओ, इस समय बात करती हुई ठहरो। मृग शिशु के समान नेत्र वाली! गोद में तुम मेरे सन्ताप को दूर करो।।७६।।

इत्यादि वृथा बकवाद करते हुए उससे, पिता आदि ने तब पूछा –''पुत्र! क्या हुआ, सब यथार्थतः कहो''।।७७।।

पूछे जाने पर भी जब वह नहीं बोला, तो पिता के द्वारा पूछे जाने पर कपिल ने समस्त वृत्तान्त आदि से कहा।।७८।।

''यह ठीक है कि कोई गुप्त कार्य हो या शुभाशुभ कार्य हो, जो मित्र सब कुछ जानता है, वह मित्र सुखदायक होता है''।।७९।।

अनन्तर पुत्र की पीड़ा को सुनकर उस व्यथा का अभाव करने के लिए वणिक्पति सागरदत्त के घर चला।।८०।।

सन्तान के समूह के लिए पितर लोग सदा हितकारी होते हैं जैसे यहाँ पर सूर्य कमलों के समूह का नित्य विकास करने वाला होता है।।८१।।

जब वृषभदास नामक सेठ उसके घर गया, तब उसके घर भी मनोरमा नामक पुत्री सुदर्शन को देखकर काम के बाणों से विद्ध हो गई। घर जाकर मानों वह पिशाच के द्वारा ग्रहण की गई हो, इस प्रकार विह्वल हो गई।।८२-८३।।

''हे मन को अभीष्ट मेरे प्राणवल्लभ! तुम्हारे बिना घडी भी सैकड़ों कल्पों के समान बीतती है''।।८४।।

निमेष भी मास के समान लगता है, घर कारागृह जैसा लगता है। हे नाथ! मेरे प्राण धारण का वचन दो।।८५।।

संसार में वही नरशार्दूल परम उदय वाला है, जो मेरे को दर्शन मात्र से यहाँ कामदेव पीड़ित कर रहा है''।।८६।।

इत्यादि प्रलाप को उसके प्रति संसक्त मन वाली वह भोजनादिक छोड़कर निरन्तर करती थी।।८७।।

ठीक ही है, दुष्ट काम के द्वारा पृथ्वी तल पर बडे-बडे रूद्रादि भी

जल गए, अन्य भोले भालों की तो कथा ही क्या है?।।८८।।

तभी वहाँ पर वह सेठ आया। उसे देखकर सागरदत्त ने भी उठकर आदर कर स्थान, आसन और शुभ वाक्यों से उत्तम सम्मान किया। सज्जनों का यह नित्य स्वभाव होता है कि, वे सज्जनों के प्रति अत्यधिक विनययुक्त होते हैं।।८९-९०।।

अनन्तर साधर्मियों के योग्य कुशल वार्ता कर कन्या के पिता ने प्रसन्न होकर कहा।" हे सज्जनोत्तम सेठ!।।९१।।

आज मेरा मन्दिर विशेष रूप से पवित्र हो गया, जो कि पवित्र गुणों के सागर आप आ गये।।९२।।

कृपाकर प्रीतिपूर्वक कुछ कार्य के विषय में कहिए" अनन्तर वृषभदास ने भी अपने मन की बात कही।।९३।।

''आपकी मनोरमा नाम की पुण्य से पवित्र पुत्री है। आप परम आदरपूर्वक सुदर्शन के लिए दीजिए''।।९४।।

सागरदत्त नामक बुद्धिमान सेठ उसे सुनकर सन्तुष्ट हुआ। वह बोला- ''हे बुद्धिमान सेठ! साररूप स्वर्ण और मणि का सम्भव हुआ सुखदायक संयोग किसके लिए सुखदायी नहीं होता है? अतः मैं प्रसन्नतापूर्वक तुम्हारे पुत्र के लिए कन्या दे रहा हूँ''।।९५-९६।।

हे भद्र ! मेरे द्वारा कहे हुए अन्य वचनों को अब सुनों, जिन दोनों का समान धर्म और (जिन दोनों का) समान कुल होता है।।९७।।

उन दोनों में मैत्री और विवाह होता है। सम्पन्न और असम्पन्न में मैत्री और विवाह नहीं होता है। हम दोनों के सम्बन्ध से भी यह श्लोक सत्य हो गया है।।९८।।

ऐसा कहकर श्रीधर नामक ज्योतिष शास्त्र सम्पन्न विद्वान को बुलाकर सम्मान देकर वणिक् बोला ।।९९।।

''तुम विवाह के योग्य शुभ लग्न बतलाओ । वह व्यवहार सज्जनों को मान्य होता है जो भव्य जीवों को शुभ होता है''।।१००।।

वह बोला- ''समस्त दोषों से रहित वसन्त मास की शुक्ल पक्ष की

पंचमी तिथि निकट है।।१०१।।

तिथि की पूर्णता पर जो बुद्धिमान विवाह करता है, उसका घर पुत्ररत्न और समृद्धियों से पूर्ण होता है''।।१०२।।

अनन्तर परम आनन्द से भरे हुए उन दोनों वणिक पतियों ने सुख के घर जिनमन्दिर में पंचामृत जिनेन्द्र भगवान का महान् अभिषेक किया और जलादि से सुखकारी महापूजा की।।१०३-१०४।।

अनन्तर उन दोनों ने चित्त को विशेष अनुरंजित करने वाले खंजनों (खंजन-एक विशेष प्रकार की चिडिया) से युक्त बड़े-बड़े स्तम्भों से ऊँचा सार वस्त्रादि से युक्त, पुष्पमाला से सुशोभित, सज्जनों के हित को हरने वाला, पवित्र, लक्ष्मी के विस्तृत निवास के समान पूर्ण कुम्भादि से युक्त उत्तम वेदी, सुशोभित ध्वजा से युक्त, स्त्रियों के संगीत की ध्वनि और बाजे से सुशोभित लोगों के महादान के प्रवाह से कल्पवृक्ष के समान, केले के स्तम्भों से युक्त, सुन्दर तोरणों से सुशोभित दिव्य मण्डप बनाकर कृल स्त्रियों ने मनोहर मंगल स्नान कराकर, वस्त्र और आभूषण के समूह तथा माला, ताम्बूल आदि से युक्त शची और इन्द्र के समान पवित्र बधु और वर को महोत्सवों के साथ सुन्दर, पवित्र मन्दिर में लाकर वेदी में बैठाकर, फूल और गीले चावल आदि से सुमानित, जैन पण्डित के द्वारा कहे हुए होम जप आदि से।।१०५-१११।।

शुभ लग्न, रम्य दिन में कुलाचार के विधानानुसार भोजनादिक महान और चित्त को अनुरंजित करने वाले दान मान से सागरदत्त नामक सेठ ने भार्यादि से युक्त पूर्ण श्रृंगार कर सुदर्शन के शुभ हाथ में ''चिरकाल तक जियो'' ऐसा कहकर पुण्यधारा के समान उज्ज्वल ''यह मैंने तुम्हें दी'', यह कहकर प्रसन्नता पूर्वक जलधारा दी।।११२-११३-११४।।

उस बुद्धिमान सुदर्शन ने भी समस्त सज्जनों की साक्षी में प्रकृष्ट मद को प्रदान करने वाले उसके (मनोरमा के) हस्तकमल को ग्रहण किया।।११५।।

इस प्रकार वहाँ पर उन दोनों के पुण्य योग से सज्जनों के आनन्द का कारण दिव्य विवाह मंगल हुआ ।।११६।।

इस प्रकार सार विभूति रूप सैकडों मंगलों से शुभ सुमान - दान से

नित्य पूर्ण मनोरथों के साथ सम्पूर्ण विवाहोत्सव हुआ। तीनों भुवनों में सभी लोगों के प्रचुर प्रमोद का जनक, सन्तान की वृद्धि करने वाला, मंगल शुभ देह वालों के सत्पुण्य से होता है।।११७।।

इस प्रकार पंचनमस्कार माहात्म्य प्रदर्शक सुदर्शन चरित्र मे विद्यानन्दि विरचित सुदर्शन मनोरमा का विवाह मंगल व्यावर्ण नामक चतुर्थ अधिकार समाप्त हुआ ।

पंचमोऽधिकार

(सुदर्शन को पुत्र प्राप्ति)

अनन्तर पति-पत्नी पूर्व पुण्य के प्रभाव से इन्द्राणी और इन्द्र के तुल्य महान् स्नेह से युक्त हो गए।।१।।

अपने पंचेन्द्रिय के विषय रूप विविध भोगों को भोगते हुए घर में परम आनन्द से युक्त हो भली भाँति स्थित रहे।।२।।

अनन्तर कालक्रम से अत्यधिक सुरतोत्सव होने पर मनोरमा ने अपने पुण्य से शुभ गर्भ धारण किया।।३।।

जिस प्रकार आकाश की कान्ति प्रजाओं के जीवन हेतु मेघ को जन्म देती है, उसी प्रकार नव मास बीत जाने पर उसने उत्तम पुत्र उत्पन्न किया।।४।।

समस्त लक्षणों से सम्पूर्ण, जनप्रिय सुकान्ता नामक रत्नमयी भूमि सम्पति की खान रत्नों के समूह से जिस प्रकार युक्त होती है।।५।।

(मुनि दर्शन)

इसी प्रकार वृषभदास नामक सेठ पुण्य के परिपाक से तारागण से युक्त चन्द्र के समान पुत्र, पौत्रादि से युक्त श्रीमज्जिनेन्द्र चन्द्र के द्वारा कहे हुए धर्म कर्म में तत्पर, श्रावकाचार से पवित्रात्मा तथा दान - पूजा परायण होकर जब रह रहा था, तभी ज्ञानलोचन समाधिगुप्त नामक मुनीन्द्र वन के मध्य आए।।६-७-८।।

वे बहुत बड़े संघ के साथ थे, रत्नत्रय से सुशोभित थे, श्री जिनेन्द्र मत रूपी सागर की वृद्धि के लिए एकमात्र बुद्धिमान चन्द्र थे।।९।।

वे तप में रत्नाकर थे, नित्य भव्य रुपी कमलों के विकास के लिए सूर्य थे तथा जीवादि सप्त तत्व के अर्थ का समर्थन करने में विशारद थे।।१०।।

धर्मोपदेश रूपी अमृत की वृष्टि से उनका परमोदय हुआ था। दयानिधि वे भव्य चातकों के समूह को सदा संतृप्त करते थे।।११।।

उनके आगमन मात्र से नन्दन वन के समान वह वन समस्त ऋतुओं के फल और पुष्पों के समूह से सुमनोहर हो गया।।१२।।

भरे हुए स्वच्छ जलाशय तब सुशोभित होने लगे। लोगों के ताप को नष्ट करने वाले वे सज्जनों के मन के समान थे।।१३।

क्रूर सिंहादिक भी दयापरायण हो गए। साधुओं के अच्छे प्रभाव से कौन सा शुभ नहीं होता है।।१४।।

उनके प्रभाव को देखकर वनपाल अत्यधिक हर्षित हो गया। वह फलादिक लाकर, आगे रखकर राजा से बोला।।१५।।

हे राजन्! संसार को अनन्दित करने वाले, भूतल को पवित्र करने वाले मुनि बहुत बड़े संघ के साथ वन में आये हैं। ।।१६।।

उस बात को सुनकर राजा ने उसे दान देकर वेगपूर्वक भव्यों को सुख देने वाली भेरी बजवाकर, वृषभदास आदि समस्त नगरवासियों के साथ वन जाकर, मुनि के दर्शन कर, प्रमोदपूर्वक तीन प्रदक्षिणा देकर, सुखप्रद मुनि के चरणकमलों की पूजा कर हाथ जोड़कर नमस्कार किया।।१७,१८,१९।।

दयाराम के समुद्र स्वामी समाधिगुप्त नामक मुनि ने भव्यों को अनुक्रम से धर्मवृद्धि दी। वे राजा आदि हर्षित हुए।।२०।।

(मुनिराज द्वारा धर्मोपदेश)

अनन्तर उनके द्वारा अत्यधिक विनयपूर्वक पूछे जाने पर मुनि श्रेष्ठ ने धर्म कहा। हे भव्यों! जिनवाणी को सुनों।।२१।।

परम उदय वाले सुखकर धर्म को नित्य करो। जिससे पुत्र मित्रादि से युक्त सम्पदायें प्राप्त होती हैं।।२२।।

धर्म से भव्य जीव को क्रम से सुराज्य, नित्य मान्यता, शौर्य, औदार्य आदि गुण, विद्या, यश, प्रमोद और धन-धान्यादिक की प्राप्ति होती है। मुनि और श्रावक के भेद से वह धर्म दो प्रकार का होता है।।२३-२४।।

मुनियों को वह महाधर्म स्वर्ग और अपवर्ग को देने वाला, समस्त पंच पापों के त्याग रूप तथा रत्नत्रयात्मक होता है।।२५।।

उनमें से आदि में दोष रहित श्रावकों का धर्म अणुव्रत रूप माना गया है। केवल ज्ञानी अर्हन्तदेव तथा गुरू निग्रन्थ स्मरण किए गए हैं।।२६।।

दशलाक्षणिक धर्म है। उसके प्रति श्रद्धा सुखप्रद है। दुर्गति को नष्ट करने वाली उस श्रद्धा की भव्यजनों को सदा रक्षा करना चाहिए।।२७।।

जिनोक्त सप्त तत्वों का जो निर्मल श्रद्धान है, वह सम्यग्दर्शन कहा गया है। वह भव वन भ्रमण का नाश करने वाला है।।२८।।

सात प्रकृतियों के उपशम, मिश्रण और क्षय से जो सम्यग्यदर्शन होता है, वह क्रमशः औपशमिक, मिश्र और क्षायिक कहा जाता है।।२९।।

सम्यग्दर्शन से युक्त धर्म होता है, जो कि भव्यों को स्वर्ग और मोक्ष देने वाला होता है। जिस प्रकार कि अधिष्ठान से युक्त प्रासाद सुशोभित होता है।।३०।।

श्रेष्ठ मुनियों ने पाँच उदुम्बर फलों से युक्त मद्य, माँस तथा मधु के त्याग को गृहस्थों के अष्टमूलगुण कहें हैं।।३१।।

तथा सत्पुरूषों को नित्य द्यूतादि व्यसनों का त्याग करना चाहिए। इन व्यसनों के आश्रय से महान पुरूषों को भी कष्ट हुआ।।३२।।

सप्त व्यसनों में प्रधान द्युत कहा जाता है। इस द्यूत से कुल, गौत्र, यश और लक्ष्मी का विनाश होता है, अतः बुद्धिमान व्यक्ति को इसका त्याग करना चाहिए।।३३।।

जुवारियों में सदैव राग, द्वेष, असत्य वचन आदि समस्त दोष रहते हैं, जिस प्रकार सर्पों में दुर्विष रहता है।।३४।।

इस विषय में श्रावस्ती के राजा सुकेतु का उदाहरण है, जिसने जुए के दोष से अपना राज्य भी गँवा दिया है।।३५।।

राजा युधिष्ठिर भी द्युत के द्वारा छले गए और कष्टकर अवस्था को प्राप्त हुए, अतः भव्यजनों को इसका त्याग करना चाहिए।।३६।।

सुना जाता है कि पहले कुम्भ नामक काम्पिल्य का अधिपति राजा

अपने रसोइए के साथ (माँस खाने से) विनाश को प्राप्त हुआ।।३७।।

मांस में आसक्त, नष्ट बुद्धि वाला लोगों का और बालकों का भक्षक बक राजा लोंगों के द्वारा निन्दित हुआ।।३८।।

उसने ब्राह्मण के पुत्र को खा लिया, अतः बुद्धिमान् नगरवासियों ने उसका परित्याग कर दिया। वह मरकर दुर्गति को प्राप्त हुआ। पापियों की ऐसी ही गति होती है।३९।।

मद्यपायी की शीघ्र मद्य के पीने मात्र से अपने पाप से सदा बुद्धि नष्ट हो जाती है। (इस विषय में) दृष्टान्त कहा जाता है।।४०।।

एकपाद नामक एक ब्राह्मण पुत्र एक बार परिव्राजक के वेष में गंगा स्नान के लिए निकला। वन में चाण्डाली से युक्त मद्य माँस को खाने वाले मतवाले चाण्डालों ने उसे पकड कर कहा ''हे द्विजात्मन! ४१-४२।।

मद्य, मास, और स्त्री के मध्य जो तुम्हें अच्छी लगे, उसमें एक का अपनी इच्छा के अनुसार भोग कर तुम स्नान के लिए जाओ।।४३।।

अन्यथा मरणकाल तक जाह्नवी माता (गंगा स्नान) दुर्लभ हो जायगी''। उस बात को सुनकर वह ब्राह्मण भी मन में विचार करने लगा।।४४।।

जो पाप से लिप्त करने वाले, नरक दुःख का कारण है, ऐसे कुल और गोत्र का क्षय करने वाले मांस को ब्राह्मण कैसे खायेंगें?''।।४५।।

कहा भी है- तिलसर्षपमात्रं च, मासं खादन्ति ये द्विजा ।
तिष्ठन्ति नरके तावद्यावच्चन्द्र दिवाकरौ ।।४६।।

जो ब्राह्मण तिल और सरसों के बराबर भी मांस खाते हैं वे जब तक सूर्य और चन्द्रमा हैं, तब तक नरक मे रहते हैं।।४६।।

किसी भ्रान्ति से भी काष्ठ की बनी हुई चाण्डाली का संगम होने पर पाप के कारण ब्राह्मणों ने प्रायश्चित कहा है।।४७।।

सूत्रामणि नामक यज्ञ में ब्राह्मणों ने बहेडा, गुड़ और जल से बनी हुई मद्य को ग्रहण किया। इस प्रकार वेदमूढ़ वह ब्राह्मण, मद्य पीकर प्रमत्त हो गया। दुर्बुद्धि वह कौपीन छोड़कर नृत्य कर कष्टपूर्ण क्षुधा से पीड़ित हो गया।।४८-४९।।

और माँस खाकर कामाग्नि के प्रज्वलित होने से चाण्डाली का संसर्ग कर वह भी दुर्गति को गया।।५०।।

अतः सज्जनों के द्वारा सैकडों दुःखों को प्रदान करने वाली मद्य का त्याग किया जाता है। मद्यपान करने वालों की संगति भी त्यागने योग्य है।।५१।।

गणिका के संसर्ग से भी पापराशि कही गई है। मद्य, माँस, में रत होने, परस्त्री दोष तथा शिकार खेलने से ब्रह्मदत्तादि राजा नष्ट हो गये। चोरी से शिवभूति आदि तथा परस्त्री से रावण आदि नाश को प्राप्त हो गये।।५२-५३।।

अतः शिकार खेलना, चोरी करना तथा परस्त्री गमन नरक के कारण हैं। सज्जनों को पाप प्रदान करने वाली दुष्टता का सदा त्याग करना चाहिए।।५४।।

अत्यधिक रूप से पाँच अणुव्रत,तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत बुद्धि रूपी धन वालों को पालना चाहिए।।५५।।

सार रूप धर्म को जानने वालों को नित्य रात्रिभोजन त्यागना चाहिए। धर्म तत्व को जानने वालों में श्रेष्ठ जनों को बिना छना जल छोड़ना चाहिए।।५६।।

मांस त्याग रूप व्रत की विशुद्धि के लिए दया धर्म परायणों को चमड़े के पात्र में जल, घी आदि को रखना सदा त्यागना चाहिए।।५७।।

मद्य, मांसादिक के दिखाई देने पर भोजन का परित्याग कर देना चाहिए। श्रावकों को सदा कन्दमूलादिक छोड़ना चाहिए।।५८।।

सुख का साधन पात्रदान सदा अपनी शक्ति से करना चाहिए। इसके भेद होते हैं- आहार दान, अभय दान, औषधि दान और शास्त्र दान।।५९।।

श्रीमज्जिनेन्द्रों की पूजा सदा सद्गति प्रदान करने वाली होती है। जिनेन्द्र स्तुति, जाप में उत्तम मन लगाना ये सब पाप को नष्ट करने वाले हैं।।६०।।

शास्त्र का श्रवण नित्य करना चाहिए। उत्तम बुद्धि का रक्षण, लक्ष्मी,

कल्याण और यश को करने वाला एवं कर्म रूपी आस्रव का निवारण करने वाला है।।६१।।

जैन तत्व को जानने वाले लोगों को अंत में सल्लेखना धारण करना चाहिए। सैकडों सुखों को प्रदान करने वाला परिग्रह त्याग करना चाहिए।।६२।।

इत्यादि धर्म सद्भाव को सुनकर वे समस्त राजादिक सुगुरू को नमस्कार कर अत्यधिक आनन्द से भर गए।।६३।।

कुछ भव्यों ने जिनकथित उपवास सहित व्रत, शील सम्यक्त्वपूर्वक ग्रहण कर विशेष रूप से धर्म का आश्रय लिया ।।६४।।

सेठ वृषभदास का वैराग्य

अनन्तर सेठ वृषभदास ने वैराग्ययुक्त मन से संसार की असारता आदि के विषय में सोचा।।६५।।

यौवन वृद्धावस्था से व्याप्त है, सुख का अवसान दुःख रूप है, लोक में लक्ष्मी शरत्कालीन मेघ के समान अस्थिर है।६६।।

आश्चर्य की बात है, मोह रूपी महाशत्रु के वश नित्य स्त्री और स्वर्ण की तृष्णा में मैंने व्यर्थ ही समय बिता दिया।।६७।।

पुत्र, मित्र, स्त्री आदि सब बुलबुले के समान हैं, भोग सर्प के शरीर के समान आभा वाले, तत्क्षण प्राण पर प्रहार करने वाले हैं।।६८।।

यमराज पापी, दुष्ट, क्रूर और प्राणियों के प्राण का नाश करने वाला है। समीप में स्थित होने पर भी मुझ भोले भाले ने यथार्थ रूप नहीं जाना।।६९।।

यह किसी गर्भस्थ, बालक, युवक, धनी, निर्धन, गृहस्थ तथा वनस्थ तापसों को भी पकड लेता है।।७०।।

दावानल के समान यह दण्डी संसार में जो बली हैं, उन समस्त

दुरात्माओं को चित्त में तृण के समान मानता हुआ नष्ट कर देता है।।७१।।

परिवार से परिष्कृत जो रूप और लक्ष्मी के मद से युक्त हैं, उन्हें भी यह पापी सर्वथा नष्ट कर देता है।।७२।।

अतः जब तक यह शरीर चतुर इन्द्रियों से युक्त है, जब तक आयु का अन्त नही आता है, तब तक मैं अपना हित करूँगा।।७३।।

(सेठ की दीक्षा व सुदर्शन को श्रेष्ठीपद)

यह सोचकर वैराग्य में तत्पर, पवित्र आत्मा वाले सेठ ने उन समाधि गुप्त नामक मुनि को हाथ जोड़ नमस्कार कर कहा-"हे स्वामी! हे मुनिराज! भव्य कमलों के लिए सूर्य! तुम सदा श्रीजिनेन्द्र कथित स्याद्वाद रूपी समुद्र के लिए चन्द्रमा हो।।७४-७५।।

आपकी शरदकालीन चन्द्रमा का तिरस्कार करने वाली कीर्ति तीनों लोकों में व्याप्त है। आप सार और असार के विचार को जानते हैं, पाँच प्रकार के आचार की धुरी को धारण करने वाले हैं।।७६।।

छह प्रकार के अच्छे कर्मों से आपने बन्धन शिथिल कर दिए हैं परोपकार के समुह से आपने भूतल को पवित्र किया है।।७७।।

कृपा कर पाप को नष्ट करने वाली मुझे जैनी दीक्षा दीजिए" वह स्वामी भट्टारक भी उनके निश्चय को स्थिर मानकर, हे भव्य! जैसा तुम्हें अभीष्ट हो, तुम अपने हित को करो"। इस प्रकार युक्ति को जानने वाले ज्ञानी (मुनिराज) ने शुभ वाणी कही।।७८-७९।।

सेठ वृषभदास ने गुरू की आज्ञा प्रमाण मान सिद्ध परमेष्ठियों को, जिनों को तथा गुरू के चरण कमलों को नमस्कार कर, विनय वचनों से सुदर्शन को राजा को सौंपकर कहा! "आप इसका सदा पालन करें।।८०-८१।।

श्रीमान के सार रूप पुण्य से मैं अपना हित करता हूँ" इस प्रकार आग्रह करने पर उसने भी अनुमति दी और प्रंसंशा की।।८२।।

"हे सेठ! यहाँ संसार रूप वन मे आप जैसे धन्य हैं जो जिनदीक्षा से निजात्मा को पवित्र करते हैं"।।८३।।

अनन्तर अत्यन्त हर्षित आत्मावाला सेठ जिनाभिषेक और पूजन कर बन्धुओं से विनय युक्त मधुर उक्तियों से पूंछकर, बाह्य और आभ्यन्तर जन्य परिग्रह का त्याग कर सुदर्शन को शीघ्र धन- धान्यादिक देकर तथा अपना श्रेष्ठी पद भी देकर, सबसे क्षमा मांगकर दीक्षा लेकर शल्यरहित विचक्षण मुनि हो गया।।८४,८५,८६।।

जिनमती नामक सेठानी ने भी तब उन गुरू के चरणयुगल में प्रणाम कर मोहादि परिग्रह से पराड़मुख होकर, वस्त्र मात्र ग्रहण कर यथायोग्य दीक्षा लेकर भक्तिपूर्वक शुभ मन वाली किसी आर्यिका का आश्रय लिया।।८७,८८।।

इस प्रकार समय पाकर दोनों ने जिनेन्द्रोक्त सुनिर्मल तपकर समाधि पूर्वक स्वर्ग के सुख का आश्रय लिया।।८९।।

वहाँ पर दोनों अपने पुण्य से परम आनन्द से भरे हुए ठहरे। जिनेन्द्र के तप से लोक मे कौन सा उत्तम सुख असाध्य है? कोई नहीं है।।९०।।

इधर बुद्धिमान् सुदर्शन शुभ श्रेष्ठि के पद को पाकर राजमान्य होकर सत्य शौचादि गुणों से युक्त होकर, पिता की सत्सम्पदा पाकर तथा विशेष रूप से अपने द्वारा उपार्जित सम्पदा पाकर पुण्य रहित लोगों के लिए दुर्लभ, मन को अभीष्ट भोगों को भोगते हुए, मनोरमा प्रिया व पुत्र से युक्त सज्जनों से घिरा हुआ वह ऐसा लगता था मानों अपने देव समूह से घिरा हुआ सुशोभित इन्द्र या प्रतीन्द्र ही हो।।९१,९२,९३।।

वह श्रीमज्जिनेन्द्र के पद कमल के पूजन में एक मात्र पवित्र बुद्धि वाला सम्यग्दृष्टि तथा जिनेन्द्रोक्त श्रावकाचार का पालन करने में तत्पर था।।९४।।

पात्रदान के प्रभाव से वह दूसरा कल्याण रूप राजा था। वह दयालु, परम उदार और सागर से भी अधिक गम्भीर था ।।९५।।

मनोरमा रूपी लता से युक्त, पुत्र रूपी पल्लवों के समूह से युक्त

परोपकार करता हुआ, वह कल्पवृक्ष के समान सुशोभित हुआ।।९६।।

उसने जिनेन्द्र भवनों का उद्धार कराया और संसार के प्राणियों को तृप्त करने वाली मेघमाला के समान पापनाशक प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराई।।९७।।

राज्य कार्यों के मध्य में धीर बुद्धिवाला वह जिन कथित धर्म करता हुआ तीनों सन्ध्याओं में जिनराज की वंदना और भक्ति में तत्पर रहता था।।९८।।

सज्जनों को आनन्द देने वाला वह पवित्रात्मा नित्य जिनेन्द्र भगवान की वाणी सुनता था व सद्गुरूओं की सेवा करता था।।९९।।

भुवनों में उत्तम उसकी धर्म प्रवृत्ति का क्या वर्णन किया जाये? जिसे देखकर बहुत से लोग धार्मिक हो गए।।१००।।

इस प्रकार सार रूप जिनेन्द्र भगवान् के धर्म का रसिक सुदर्शन सद्दान मानादि से नित्य सुन्दर परोपकार में तत्पर रहकर राजादि से सम्मान प्राप्त कर, नाना प्रकार के रत्न और सुवर्ण की वस्तुओं के समूह से, लक्ष्मी और सज्जनों से मण्डित होकर सार रूप गुणों की निधिस्वरूप सुखपूर्वक घर में रहा।।१०१।।

इस प्रकार श्री सुदर्शन चरित्रमें पञ्चनमस्कार माहात्म्य प्रदर्शक मुमुक्षु श्री विद्यानन्दि विरचित सुदर्शन श्रेष्ठि पद प्राप्ति, समाधिगुप्त मुनिराज का धर्मोपदेश एवं वृषभदास आदि पुरूषों की जिन दीक्षा का वर्णन करने वाला पाँचवा अधिकार समाप्त हुआ।

षष्ठोऽधिकारः

(कपिला का प्रलोभन)

एक बार अपने पुण्य से रूप सौभाग्य से सुन्दर बुद्धिमान् सेठ सुदर्शन अपने कार्य के लिए किसी नगर में जा रहा था। वह शील सम्पन्न, परस्त्रियों से पराङ्मुख, श्रावकाचार से पवित्र आत्मावाला तथा जिन भक्तिपरायण था।।१,२।।

नतमस्तक होकर जब वह कपिल के घर के समीप गया। तो वहाँ रूप से रञ्जित उस सज्जन को कपिला ने देखा।।३।।

तब काम के वाणों से भयंकर चित्त में उसने भुवन में प्रतिकारक उस रूप के विषय में सोचा, ''जब मैं इसके साथ अपनी इच्छा से कामक्रीड़ा करूँगी, तभी मेरा जीवन, जन्म और यौवन भूमि पर सफल है।।४-५।।

अन्यथा जनरहित स्थान में फूल के सामने सब निष्फल है।'' काम विहला ब्राह्मणस्त्री कपिला ने ऐसा विचारकर, जब कपिल अपनी इच्छा से किसी कार्य से कहीं गया तो अपनी सखी से कहा - ''हे माता! इस शुभ सुदर्शन को तुम लाकर मेरे कामदाह की शान्ति के लिए दो, नहीं तो हे भद्रे! तुम मुझे यम मन्दिर को प्राप्त हुई ही समझो।।६,७,८।।

सत्य रूप में मेरे ऊपर तुम्हारा यह उपकार होगा। मेरे प्राण धारण करने में निश्चित रूप से तुम जैसी अन्य सखी नहीं हैं''।।९।।

जिस प्रकार ताराओं के समूह के होने पर चन्द्रमा की चाँदनी अन्धकार को नष्ट कर देती है। सचमुच कामातुरा चंचला नारी क्या नहीं करती है? उस बात को सुनकर पापिनी उसके द्वारा प्रेरित बोलने में चतुर वह प्रंपचिंनी सखी भी शीघ्र जाकर हाथ जोड़कर बोंली - ''हे सुन्दर व्यक्तियों में उत्तम! तुम सुनों। तुम्हारा मित्र कपिल ब्राह्मण महाज्वर से पीड़ित है।।१०,११,१२।।

आप उसके बालमित्र होकर भी कैसे नहीं आए''। उस बात को सुनकर बुद्धिमान वह वणिक् श्रेष्ठि सुदर्शन भी उससे बोला! ''हे भद्रे! मैं यह बात सर्वथा नहीं जानता हूँ। तुम्हारी उक्ति और शपथ से इसी समय जान रहा हूँ''।।१३,१४।।

ऐसा कहकर मित्र से प्रेम करने वाला सुदर्शन उसके साथ चला। ''हाय! मैंने जान बूझकर कुछ दिन उत्तम मित्र को प्रमाद से नहीं देखा'', इस प्रकार मन में विचार करते हुए जब उसके घर आता है तब तक वह दुष्टा कपिला कामासक्त होकर माला, चन्दनादि से अपना श्रंगार कर भूमि पर कोमल बिछौने से युक्त पलंग पर कछवी के समान सुन्दर वस्त्र से मुख को आच्छादित कर स्थित हुई। जो लम्पट स्त्री होती है, वह निश्चित रूप से दुराचार के प्रकार में चतुर होती है।।१५,१६,१७,१८।।

जिस प्रकार यशोधरा की स्त्री देवरत में रक्त थी अथवा जैसे वीरवती तथा दुष्टा गोपवती अन्य पुरूष में रक्त थीं।।१९।।

जो लोक में धर्म रहित और कुबुद्धि रूप विष से दूषित होती हैं? ऐसी काम पीड़ित दुष्टा स्त्रियाँ क्या क्या नहीं करती हैं।।२०।।

तब बुद्धिमान सेठ आया और बोला-''भद्रे! मेरा मित्र कहाँ हैं''? उसने शीघ्र कहा कि ''तुम्हारा मित्र ऊपर है।।२१।।

हितकार चित्त से हे सेठ! तुम अकेले ही जाओं''। इस बात को सुनकर वह भी मित्र को देखने के लिए उत्सुक हो गया।।२२।।

वह बुद्धिमान् सेठ साथ में आए समस्त लोगों को छोड़कर पवित्र बुद्धि से वहाँ जाकर पलंग पर बैठकर बोला।।२३।।

''तुम्हारे शरीर में क्या अनिष्ट हुआ, हे मित्र श्रेष्ठ! कहिए कितने दिन बीत गए। हम लोगों को क्यों नहीं बुलाया?।।२४।।

तुम्हारी क्या दवा की जाए, मुझे सुखदायक वचन दो अथवा कौन वैद्य आता है। हे मित्र! हस्तकमल को दिखलाओ''।।२५।।

इस प्रकार वह बुद्धिमान् जब तक मित्र के स्नेह से बोला, तब तक उसने भी उसका हाथ पकड़कर वक्षः स्थल पर रख लिया।।२६।।

तब उसे देखकर वह भी हृदय में कम्पित हुआ। बुद्धिमान् जब वह शीघ्र ही उठ रहा था तो उसे पुनः पकड़कर उसने कहा।।२७।।

''हे कामदेव को जीतने वाले! तुम यहाँ मेरे वचन सुनों। सुभोग रूपी अमृत के पान से कामरोग दूर करो।।२८।।

तुम्हारे अतिरिक्त कोई दूसरा चिकित्सा कर्म को जानने वाला मेरा वैद्य नहीं है। अपने अधर रूपी अमृत की धारा मुझे शीघ्र दो।।२९।।

जिससे हे प्राणवल्लभ! मेरी कामाग्नि की शान्ति हो। कामदेव के बाण से हुए घाव पर तुम पट्टी बाँधने के समान आलिंगन करो।।३०।।

यह चूर्ण तुम्हारा ही है, जो कि मुख का चुम्बन दो। हे सुन्दरों में उत्तम स्वामी! मेरे जाते हुए प्राणों की रक्षा करो।।३१।।

हे नाथ! काम बाण की प्रकृष्ट पीड़ा से जो मैंने कहा, हे प्रभो ! तुम सब प्रकार से मेरी आशा को पूर्ण करो''।।३२।।

इत्यादि पाप का कारण उसका वाक्य सुनकर सेठ सुदर्शन अपने चित्त में अत्यन्त भयभीत हुए।।३३।।

पवित्रात्मा वे उसके द्वारा दृढता से पकड़ लिए जाने पर सोचने लगे कि मनोरमा को छोडकर परस्त्री मेरी बहिन है।।३४।।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूप धर्म रत्न की चोरिणी इससे मेरे द्वारा कैसे शीलरूपी सागर छिन रहा है।।३५।।

चतुरों में उत्तम अधोमुख होकर वह मन में सोचकर शीघ्र ही उस कामाग्नि से जली हुई के प्रति बोला- ''हे भद्र! तुम नहीं जानती हो। तुम्हारे वचन निष्फल गए। हे विशाल नयनों वाली! मैं क्या करूँ? मुझमें नपुंसकत्व है।।३६-३७।।

कर्मों के उदय से मेरा शरीर बाहर सुन्दर है। इन्द्र और वरूण के समान मुझे शरीर सम्बन्धी फल प्राप्त है।।३८।।

समस्त ब्राह्मण समूह रूपी कमलों के लिए सूर्य स्वरूप मित्र से हमने कभी भी यह बात नहीं कही''।।३९।।

इस प्रकार मन में घबराहट उत्पन्न करने वाले उसके वचन सुनकर

नष्ट आशा वाली वह अपने मुख को काला कर दुःखित हुई।।४०।।

अत्यधिक मानभ प्राप्त कर कुलनाशिनी वह कपिला अपने हाथ से उन्हें शीघ्र छोडकर अधोमुखी स्थित रही।।४१।।

पाप से उगाए गए जो अस्थान मे ही भोग की आशा करते हैं, वे लोक में सदा दुःखी होकर मानभंग को प्राप्त करते हैं।।४२।।

व्याघ्री से डरे हुए मृग के समान वह भी अपने घर चला गया। ऐसा मानकर दुष्ट स्त्रियों के प्रति विश्वास नहीं किया जाता हैं।।४३।।

जो भव्य संसार में जिनेन्द्र वचनों में रत है, वे सुख देने वाले शील की जिस किसी प्रकार रक्षा करते हैं।।४४।।

जो मूढ़ परस्त्रीरत हैं, निकृष्ट वे पृथ्वी तल पर दुःख, दरिद्रता, दुर्भाग्य और मानभंग को प्राप्त करते हैं।।४५।।

इस प्रकार मन में जिनोक्त, सुख देने वाले सत्य वचन जानकर सुख को चाहने वालों को शील रूपी रत्न का पालन करना चाहिए।।४६।।

(बसन्तोत्सव)

अनन्तर विशुद्धात्मा वह चतुर भव्य सेठ सुदर्शन अपने शील के रक्षण में जब तक जिन कथित समस्त प्राणियों को सुख लाने वाले धर्म का आचरण करता हुआ रहा तब लोगों का मनोहर वसन्त मास आ गया।।४७-४८।।

वनस्पति और स्त्री का वह प्रिय अथवा प्रकृष्ट मद प्रदान करने वाला वह कामियों के लिए अत्यधिक रम्य और महोत्सव करने वाला था।।४९।।

वह जलाशयों को भी भली-भाँति निर्मल कर रहा था। इस प्रकार वह बसन्त नित्य सुशोभित हो रहा था। अथवा सज्जनों का संगम हितकारी होता है।।५०।।

वस्त्र और आभूषण से संयुक्त, प्रमोद के समूह से भरे हुए लोगों को वह सुख से युक्त कर रहा था। इस प्रकार वह उत्तम राजा के समान सुशोभित हो रहा था।।५१।।

पल्लवों से युक्त चम्पा, आम और बसन्तादि वृक्षों को वह सज्जनों के

समान फल, पुष्पादि से सम्पन्न कर रहा था।।५२।।

वहाँ पर बसन्त का आगमन होने पर प्रमोद से भरे हुए हृदय वाला धात्रीवाहन राजा वस्त्रों से परिष्कृत होकर, छत्र, चामर तथा बाजों से युक्त होकर समस्त अन्तः पुरादि एवं समस्त नगरनिवासीयों से युक्त हुआ क्रीड़ा के लिए वन में गया।।५३.५४।।

(अभयमती रानी कहा व्यामोह)

वहाँ पर गई हुई रानी अभयमती ने सुदर्शन के अत्यधिक महाप्रीति को उत्पन्न करने वाले रूप को देखकर "भुवन के क्षोभ का कारण यह रूप आश्चर्यकारक है।" इस प्रकार मन में मोहित होकर उसकी अत्यधिक प्रशंसा की।।५५-५६।।

उसे सुनकर कपिला ब्राह्मणी ने वचन कहे कि, "हे देवि! यह मनुष्य रूपावान् होने पर भी अत्यधिक नपुंसक है।।५७।।

पुरूषत्व से हीन इसकी रूप सम्पत्ति से क्या लाभ है? पृथ्वी पर निष्फल महाकोमल लता से क्या लाभ है?"।।५८।।

अनन्तर मार्ग से भिन्न स्थान पर रथारूढ़ रानी ने सुपुत्र तथा रूप, लावण्य से मण्डित परम उदय वाली मनोरमा को देखकर, कहा "यह सुपुत्रवती गुणभूषणा स्त्री किसकी है? यह कल्पलता के समान सफल, कोमल और सुख देने वाली है"।।५९-६०।।

उसे सुनकर किसी बुद्धिमती दासी ने उससे कहा, "अहो देवि! सुपुण्यात्मा राजसेठ सुदर्शन है।।६१।।

यह भव्य गुणों का समुद्र और सज्जनों को आनन्द देने वाला है। उसकी यह कुलदीपिका दिव्य स्त्री है"।।६२।।

अभया विश्वास के कारण दासी के उस मनोहर वाक्य को सुनकर वहाँ हँसकर कपिला से बोली।।६३।।

"मैं तो यह मानती हूँ कि, उस महा बुद्धिमान् के द्वारा हे ब्राह्मणी! तुम ठगी गई। पुण्यवान् के लक्षणों से युक्त वह क्या उस प्रकार का हो सकता है?।।६४।।

जिसका पुत्र मैंने समस्त लक्षणों से मण्डित देखा है। अतः हे ब्राह्मणी! तुम लोक में सचमुच विपरीत बुद्धि वाली हो"।।६५।।

हँसकर कपिला ने अपने पुराने किए हुए आचरण के विषय में राज पत्नी से पुनः कहा- "हे देवि! तुम मेरे वचनों को सुनों।।६६।।

यद्यपि तुम सौभाग्य से युक्त, सुरूपा और चातुर्य से युक्त हो तथापि में मानती हूँ कि इसका अनुभव किए बिना पृथ्वी पर यह सफल नहीं हैं"।।६७।।

अभयमती नामक पापनिर्भय वह राजपत्नी बोली - "यदि इसका सेवन नहीं करती हूँ तो सर्वथा मैं मर जाऊँगी"।।६८।।

कष्ट है, दोनों किनारे जिसके टूट गए हैं, ऐसी नदी के समान कामाग्नि से पीडित स्त्रियाँ पृथ्वी पर क्या साहस नहीं करती हैं?।।६९।।

वह रानी इस प्रकार प्रतिज्ञा कर अनन्तर वन मे क्रीड़ा कर अपने घर आकर काम से पीड़ित होकर पलंग पर पड गई।।७०।।

कामाग्नि से प्रज्वलित होकर जिस किसी प्रकार गाढ़ प्रलाप करने लगी। नींद और भोजन को जिन्होंने छोड़ दिया है, ऐसे कामियों को चेतना कहाँ है?।।७१।।

कामवाणों से व्याप्त उसे इस प्रकार देखकर पण्डिता नामक धाय ने कहा कि, "हे पुत्री! तुम्हें क्या हुआ? कहो"।।७२।।

रानी ने चित्त में स्थित अपनी बात को धाय से कहा - "यदि मैं सुदर्शन के साथ रमण करती हूँ तो मेरा जीवन शेष बचेगा"।।७३।।

लज्जादिक का परित्याग कर कामातुरा रानी ने समस्त पापप्रद वाक्य कहे । कामियों को विवेक कहाँ?।।७४।।

उसे सुनकर पापभीरू पण्डिता धाय अपने दोनों कान बन्द कर दोनों हाथों से अपना सिर धुनती बोली।।७५।।

"हे देवी! सुनो, मैं कहती हूँ कि, धर्म, यश और सुख तब तक है, जब तक संसार का हितकारी शील रूपी रत्न नित्य है।।७६।।

शील से मण्डित स्त्रियाँ विशेष रूप से शोभित होती हैं अन्यथा रूप

आदि से युक्त होने पर भी वे विष की लतायें हैं।।७७।।

कामाकुल पापी स्त्रियाँ कायाकार्य कुछ भी नहीं देखती हैं, जिस प्रकार पाप से दुखी अभिप्राय वाला अन्धा कार्याकार्य को नहीं देखता है।।७८।।

कार्य को अपनी इच्छा से करने के लिए स्त्रियाँ विरूद्ध हो जाती हैं, जिस प्रकार कुबड़े पर आसक्त मन वाली अमृत महादेवी विरूद्ध हो गई थी।।७९।।

माता सहित पति को मारकर वह नरक गई। वे पाप के परिणाम कैसे उत्पन्न हुए? नीति है- पाप के फल से कुबुद्धि होती है।।८०।।

सुखी दुखी कुरूपी और धनवान, जिस वर को पिता ने दिया है, कुलीन स्त्रियों को उसी का सेवन करना चाहिए।।८१।।

तुम्हारा पति राजा है रूपादि गुण के समूह से मान्य है, पाप की कारण स्वरूप उसकी वंचना क्यों करती हो।।८२।।

हे भद्रे! तुमने यह निन्दित कर्म ठीक से नही सोचा। अतः अपने कुल की रक्षा के लिए तुम अपने चित्त को वश में करो।

इसी प्रकार हे पुत्री! तुम सुशीला, सार रूप सीता, चन्दना तथा द्रोपदी प्रमुख स्त्रियों का स्मरण करो।।८४।।

नीली, प्रभावती तथा अनन्तमती प्रमुख कन्याओं का स्मरण करो, जो अपने शील के प्रभाव से मनुष्य और देवों आदि के द्वारा पूजित हुईं।।८५।।

परस्त्री, परपुरूष तथा परद्रव्य जो नराधम चाहते हैं, वे पाप से दुर्गति में जाते हैं।।८६।।

परस्त्री से विमुख सुदर्शन भी पवित्र आत्मा है, श्रावकाचार से सम्पन्न है और जिनेन्द्रवचनों में रत है।।८७।।

जो निर्मोही स्वस्त्री का भी अल्प सेवन करता है। वह बुद्धिमान भव्य परस्त्री को स्पर्श कैसे करेगा?।।८८।।

कुलस्त्रियों को भी अपने पति को छोड़कर निश्चित रूप से परपुरूष में बुद्धि नहीं लगानी चाहिए"।।८९।।

इत्यादिक पण्डिता के सुखप्रद शुभ वाक्य उस रानी के मन में कष्ट

रूप हुए, जिस प्रकार कि ज्वर युक्त व्यक्ति को घी का सेवन कष्ट रूप होता है।।९०।।

कोप कर रानी बोली कि, ''मैं इस समय सब कुछ जानती हूँ, किन्तु उसके बिना शीघ्र ही मेरे प्राण चले जायेंगें।।९१।।

परोपदेश में समस्त व्यक्ति सदैव कुशल होते हैं। पृथ्वी पर मैं इस प्रकार के बहुत से उपायों को कहने में समर्थ हूँ।।९२।।

जिसके सुनने मात्र से मेरा चित्त भिद जाय। अतः उसके साथ यदि सम्बन्ध हो जाय तो मुझे सर्वथा सुख हो।।९३।।

मेरा पति पृथ्वी पर कामदेव के तुल्य है, गुणवान् भी है, फिर भी मेरी मनोवृत्ति उसी में ही प्रवृत्त होती है।।९४।।

सखी कपिला के साथ उद्यान में जाते हुए हे माता! मैंने प्रतिज्ञा की है कि ''ज्ञानी सुदर्शन के साथ, यदि मैं यहाँ रति क्रीड़ा नहीं करती हूँ तो मर जाऊँगी''। अतः हे प्राण - बल्लभे। मन मे भ्रान्ति तजकर, तुम बिना किसी प्रकार विकल्प किए हुए ऐसा कार्य करो जिससे मेरा इष्ट कार्य हो जाय। अधिक कहने से क्या?''।।९५,९६,९७।।

इस प्रकार के आग्रह को सुनकर पण्डिता ने तब उसके कहे हुए के विषय में मन में सोचा, ''हाय स्त्री का दुराग्रह कष्टकारी है।।९८।।

जिस प्रकार श्मसान में मक्खियों से व्याप्त गन्दगी पर राक्षस, नीम पर कौआ, मत्स्य पर बगुला, मलभक्षण पर शूकर, दुष्ट स्वभाव पर दुष्ट, परद्रव्य पर तस्कर प्रीति को नहीं छोडता है, उसी प्रकार बुरी स्त्री दुराग्रह को नहीं छोड़ती है।।९९-१००।।

अथवा जो, जिस प्रकार का जहाँ अवश्यंभावी शुभाशुभ होता है, वहाँ उसी प्रकार उस लोक में अवश्य होता है, यह सुनिश्चित है।।१०१।।

मैं सर्वथा पराधीन हूँ, अधिक क्या कर सकती हूँ''। ऐसा वह धाय सोचकर महारानी से बोली- ''हे पुत्री! मेरे वचन सुनों।।१०२।।

एक पत्नीव्रत से युक्त श्री सुदर्शन दुःसाध्य है। सात प्राकारों से वेष्टित भवन पुरूषों से आगम्य है।।१०३।।

यद्यपि ऐसा है, तथापि तुम्हारे प्राणों की रक्षा के लिए हृदय में इच्छा है। अथवा यहाँ पर दुराग्रह रूपी भूत है, उसका उपाय किया जाता है।।१०४।।

हे बाले ! मुग्धे! जब तक मैं तुम्हारा वाछिंत कार्य करती हूँ, तब तक तुम्हें प्राण विसर्जन नही करना चाहिए''।।१०५।।

उस रानी से पण्डिता इस प्रकार कहकर धीरज बँधाकर उसके उस कार्य को करने के लिए उद्यत हो गई।।१०६।।

ठीक ही है, लोक मे कर्म के वशीभूत हुआ पराधीन पुरूष क्या शुभाशुभ कार्य नहीं करता है?।।१०७।।

जो यहाँ कर्म का विजेता हैं, सैकडों इन्द्रों के द्वारा पूज्य हैं, केवलज्ञानरूपी दीपक हैं, समस्त गुणों से पूर्ण हैं, भव्य कमलों के समूह के लिए सूर्य हैं, परम मोक्ष सुखरूपी लक्ष्मी के स्वामी हैं, चिन्मय आत्मा स्वरूप हैं, वे

इस प्रकार श्री सुदर्शन चरित्र में कपिला एवं अभयमती रानी के दुश्चरित्र का कथन करने वाला षष्टम अधिकार समाप्त हुआ।

सप्तमोऽधिकार:

(पण्डिता धाय का षडयन्त्र)

अनन्तर श्री जिननाथ द्वारा कहे हुए श्रावकाचार को जानने वाले नित्य दान, पूजादि में तत्पर, विद्वानों में श्रेष्ठ, तत्वों के ज्ञाता सेठ सुदर्शन अष्टमी आदि चार पर्व के दिनों में कर्मों की निर्जरा वाले उपवास को अत्यधिक कर रात्रि में श्मसान में जाकर धोए हुए वस्त्रों से युक्त होने पर भी मुनि की तरह देह से निस्पृह होकर ध्यान लगाया करते थे।।१,२,३।।

इस बात को जानकर वह पण्डिता भी उन्हें लाने का उद्यम करने लगी। कुम्हार के घर जाकर और मिट्टी के मनुष्याकार सात पुतले शीघ्र बनवाकर उन्हें लेकर वह धृष्ट मन वाली संध्या में , एक को कन्धे पर रख कर वेगपूर्वक वस्त्र से आच्छादित कर जब राजा के भवन में आई, तब मुख्य मार्ग पर आने पर द्वारपाल ने उससे कहा- ''कन्धे पर यह क्या मनुष्य के समान उठाकर शीघ्र जा रही हो''।।४,५,६,७।।

वह महाधूर्ता बोली- ''अरे दुष्ट! इस समय तुम्हें क्या? मैं निःशंक मन से देवी के समीप में स्थित होकर स्वेच्छा से समस्त कार्य करती हूँ, इसमें कोई संशय नहीं है। तुम मुझे मना करने वाले बेचारे कौन होते हो''?।।८,९।।

अनन्तर उस द्वारपाल ने पण्डिता को अपने हाथ से पकडा। उस पुतले को शीघ्र पकडकर और उसके सौ टुकड़े कर, अनन्तर कोप से उससे बोली- ''हे दुष्ट! नष्ट बुद्धि वाले! पहले किसी ने भी इस राज्य में सर्वथा मना नहीं किया।।१०,११।।

कष्ट की बात है, तुमने यह रानी का पुतला व्यर्थ ही नष्ट कर दिया। हे मूढ! तुम नहीं जानते हो कि कामव्रत में उद्यत रानी, आठ दिन तक मिट्टी के पुरूष की पूजाकरेगी और रात्रि जागरण भी करेगी, उसके लिए उसने मुझे भेजा है।।१२,१३।।

वह यह मूर्ति तुमने तोड दी, तुम्हारे कुल का नाश हो गया''। नारी नित्य मायामय होती है, कार्य का आश्रय करने वाली की तो बात ही क्या है?।।१४।।

यह सुनकर वह द्वारपाल अपने मन में डरकर बोला-''हे माता! तुम मुझ सेवक को क्षमा करो।।१५।।

मूढ़, मैं हृदय मे व्रत, पूजादिक नहीं जानता हूँ। हे शुभे! आज से लेकर जो भी तुम लाओगी, उसे लाकर जो तुम्हें हितकर लगे, वह करना। मैं कुछ भी नहीं कहूँगा। निशंक होकर सदा आओ''।।१६,१७।।

ऐसा कहकर वह उसके चरण युगल में बार-बार लग गया। दोष करने पर यहाँ साधु लोग दीनवत्सल हो जाते हैं।।१८।।

अतः ''हे माता! तुम निश्चित रूप से क्षमा करो''। उसके द्वारा इस प्रकार प्रार्थना किए जाने पर धाय अपने घर आ गई।।१९।।

उसने प्रतिदिन समस्त द्वारपाल वश में कर लिए। आश्चर्य है, स्त्रियों के प्रपंच समूह का कौन पार पा सकता है।।२०।।

(सेठ सुदर्शन की शमशान में योग साधना)

अनन्तर अष्टमी के दिन उपवास, जितेन्द्रिय सेठ मुनियों को नमस्कार कर तथा आरम्भ का परित्याग कर, शुद्ध बुद्धि से युक्त हो पश्चिम प्रहर में श्मसान में प्रस्थान करने हेतु उठा तब उसका वस्त्र कहीं फंस गया।।२१-२२।।

अथवा वह इस बहाने कह रहा था कि तुम्हें आज नहीं जाना चाहिए। हे सुदर्शन! तुम उपसर्ग के योग्य नहीं हो।।२३।।

पुनः जब वह मार्ग पर जा रहा था तब निन्द्य गधा दायी ओर रेंकने लगा, इस प्रकार दुर्निमित्त हुआ।।२४।।

कुष्ठी काला नाग भी पवन के सम्मुख हुआ। बडी कठिनाई से अन्त होने वाले नाना प्रकार के अपशब्द हुए।।२५।।

श्रृंगालियों ने उपसर्ग का सूचक दुःस्वर किया। फिर भी अपने व्रत में दृढ़चित्त सुदर्शन भी, भयभीत लोगों के लिए जिसका पार पाना कठिन है,

जलती हुई चिताओं की भयंकर अग्नि से भयानक शब्द करते हुए पशुओं से जो व्याप्त था, जो यम के मन्दिर जैसा था, जिसमें राख का समूह उछल रहा था, दुष्ट के चित्त समान समल था, ऐसे घोर श्मसान में जाकर, वहाँ पर वह बुद्धिमान मेरू के समान कायोत्सर्ग में स्थित हुआ। उसने इन्द्रियों को जीत लिया था, आशंका को जीत लिया था, मोह को जीत लिया था और इच्छाओं को जीत लिया था।।२६,२६।।

वह श्री जिनेन्द्र के द्वारा कहे गए महान सप्त तत्वों के चिन्तन करने में तत्पर था। "मैं शुद्धनय से अत्यन्त सिद्ध, बुद्ध, मल रहित, समस्त द्वन्द्वों से रहित तथा समस्त क्लेशों से रहित हूँ। देहमात्र दिखाई पडने पर भी विशुद्ध चिन्मय हूँ।।३०,३१।।

संसार में कर्मों को छोड़कर मेरा कोई शत्रु नहीं हैं। पवित्र जिन कथित धर्म तीनों लोकों में उत्तम है।।३२।।

नित्य देवेन्द्रादि के द्वारा प्रपूजित दशलाक्षणिक धर्म मित्र है, जिससे भव्य लोग अत्यधिक शाश्वत स्थान का सेवन करते हैं।।३३।।

शरीर दुश्चरित्र करने वाला, वीभत्स गन्ध वाला और निर्दय है। दुःख देने वाला है, यह पोषित किए जाने पर भी आधे क्षण में नष्ट हो जाता है।।३४।।

हड्डी, मांस, चर्बी, चमडा, मल और मूत्र से भरे हुए चाण्डाल के घर के समान ज्ञानियों को इसका त्याग कर देना चाहिए।।३५।।

उस देह में उत्तम नीर क्षीर की भांति मिल गया हूँ। मैं शुद्ध निश्चय नय की अपेक्षा सिद्ध स्वभाव और उत्तम अष्ट गुणों से युक्त हूँ"।।३६।।

(पण्डिता धाय का प्रलाप)

इत्यादि वह बुद्धिमान् वणिक् श्रेष्ठ चित्त में वैराग्य का चिंतन कर रहा था। तभी आई दुर्बुद्धिनी पापी पण्डिता ने उसे देखकर कहा- "हे वणिक् श्रेष्ठ भूतल पर तुम धन्य हो, तुम सुपुण्य हो, जो कि यहाँ के राजा की श्रेष्ठ पत्नी रूप सौभाग्यशाली अभयमती तुम पर आसक्त है।।३७,३८,३६।।

संसार के चित्त का विदारण करने वाली वह कामदेव के हाथ की

भाला है। अतः तुम शीघ्र आकर उसकी आशा सफल करो।।४०।।

ध्यान, मौनादिक श्रम से स्वर्ग में जो सुख भोगा जाता है, उस सुख को हे भद्र! उसके साथ तुम यहाँ भोगो।।४१।।

सैकडों कष्टों को देने वाले इन कष्टकर तपों से क्या करना? यह सब जो तुमने आरम्भ किया है, इसका परित्याग कर वेगपूर्वक आओ"।।४२।।

इत्यादि उसके आलापों से तब वह पवित्र सेठ ध्यान से चलायमान नहीं हुआ। क्या हिमालय वायु से चलाया जा सकता है? नहीं।।४३।।

तब सूर्य अस्ताचल को प्राप्त हुआ। मानों वह अन्याय को देखने में समर्थ नहीं हो। सच में जो यहाँ महान् होता हैं, वे बुरी नीति से पराङ्मुख होते हैं।।४४।।

तब कमलिनियों ने अपने कमल रूपी नेत्रों को संकुचित कर लिया। भूमि पर अपने बन्धु का वियोग दुस्सह है।।४५।।

सूर्य के अस्त हो जाने पर वहाँ आकाश में चारों ओर अन्धकार समूह विस्तार को प्राप्त हुआ। सचमुच, यह मलिनों का स्वभाव है।।४६।।

तब सर्वत्र गोलाकार ताराओं का समूह आकाश में सुशोभित हुआ। वह ताराओं का समूह आकाश रूपी लक्ष्मी के प्रिय, महान्, सुन्दर मुक्ताहार के समान था।।४७।।

तेल युक्त तथा उत्तम बाती से युक्त अन्धकार को नष्ट करने वाले घर-घर में सुमनोहर दीपक सुशोभित हुए अथवा घर घर में सुमनोहर, स्नेह युक्त, अच्छी दशा सहित, अंधकार को नष्ट करने वाले सुपुत्र सुशोभित हुए।।४८।।

अनन्तर संसार को बढाने वाले भोगी लोग प्रसन्न होकर अपने-अपने घरों में स्त्रियों के साथ नाना भोग विलासों में रत हो गए।।४६।।

वहाँ पर योगी मुनि ध्यान में तत्पर हुए। स्वात्म तत्व में प्रवीण वे संसार को नष्ट करने वाले थे।।५०।।

अनन्तर सुविस्तीर्ण आकाश में अपनी कान्ति से अन्धकार को नष्ट करने वाला, परम उदय वाला चन्द्रमा स्पष्ट हुआ।।५१।।

वह लोगों को परम आ ादित करने वाले निर्मल जैनवादी की तरह मिथ्यामार्ग रूपी अन्धकार के समूह का विनाश करने में अत्यधिक समर्थ था।।५२।।

इस प्रकार तब लोगों के अपने अपने कार्य में लगने पर अर्द्धरात्रि में चन्द्रमण्डल के मन्दता को प्राप्त होने पर, जहाँ पर वह महाधीर श्री पंच परमेष्ठी का ध्यान करते हुए स्थित थे, वहाँ पर कालरात्रि के समान उन्मत्ता पण्डिता पुनः आ गई।।५३-५४।।

कायोत्सर्ग में लीन, सुनिश्चल उन्हें प्रणाम कर पुनः बोली-"जीवों के प्रति तुम्हारा दयाधर्म तीनों भुवनों में विख्यात है।।५५।।

अतः कामरूपी भूत से ग्रस्त, चातकी जिस प्रकार मेघ के आगमन की उत्तम इच्छा को करती है, उसी प्रकार तुम्हारे आगमन की इच्छा को करती हुई उसे शीघ्र आकर सुखी करो। हे वणिक्पति! आज ही तुम्हारा ध्यान सफल हुआ।।५६-५७।।

उसके साथ स्वर्ग लोक में भी महाभोगों को उत्कृष्ट चिन्तन आदि के साथ तुम परम आनंद से करो"।।५८।।

ऐसा कहकर पुनः ध्यान से विचलित करने के लिए सराग वचनों के साथ नाना सराग गीत गाये (कहे)।।५९।।

तथापि वह धीर जब तक ध्यान नहीं खोलता था, तब तक साहस से उद्धृत मन वाली उस पापिनी, धृष्टात्मा ने उस ध्यान से युक्त सेठ को उठाकर अपने कन्धे पर चढाकर, वेगपूर्वक वस्त्र से उन्हें आच्छादित कर, महामौन से युक्त (उन्हें) उस पलंग पर लाकर गिरा दिया। दुष्टात्मा कामिनी क्या नहीं करती है? ६०,६१,६२।।

(रानी अभयाकृत उपसर्ग)

मूढ अभयमती उस रूप के निधान को देखकर मन में सन्तुष्ट हुई (कि) "आज मै पृथ्वीतल पर धन्य हूँ"।।६३।।

दुष्ट स्त्रियों का यह स्वभाव होता है कि वे काम के बाणों से पीड़ित होकर दूसरे मनुष्य को देखकर मन मे प्रमोद करती है।।६४।।

उसी प्रकार पाप कर्म करने वाली दुष्टबुद्धि अभयमती कामियों के सुमनोहर श्रृंगार कर, हाव भावादिक समस्त विकारों का प्रदर्शन करके काम पीड़ित वेश्या के समान लज्जा त्याग कर बोली।।६५,६६।।

"तुम मेरे प्रिय हो, मेरे स्वामी हो, तुम मेरे बलशाली प्राणनाथ हो। मैं तुम्हारे रूप, सौन्दर्य को देखकर तुम्हारे प्रति अनुरागिणी हो गई हूँ।।६७।।

हे कृपासिन्धु! तुम मेरे प्रिय हो। मैं इस समय प्रार्थना करती हूँ कि मुझे परम शान्तिकारक गाढ आलिगंन दो"।।६८।।

कामाग्नि से पीडित वह रानी इत्यादिक प्रलाप कर गधी के समान लज्जारहित होकर मुख में मुख डालकर तथा सैकडों प्रकार के गाढ़ आलिगंन के द्वारा कामग्नि की ज्वाला से प्रदीप सराग वचनों से, अन्य विकार के समूह कटिस्थान आदि के दिखलावे से तथा अपनी नाभि दिखवाकर भी उसे विचलित करने में असमर्थ हुई।।६९,७०,७१।।

तत्क्षण वह पृथ्वी पर निरर्था और मदरहित हो गई। हवा चंचला होने पर भी सुमेरू को चलाने में समर्थ नहीं होती है।।७२।।

वे भव्य (सुदर्शन) ध्यान रूपी अच्छे पर्वत से मेरू के समान दृढ़ रहे। जिन चरण कमलों के भ्रमर स्वरूप वे वहाँ विचलित नहीं हुए।।७३।।

अनन्तर निर्भय होकर निरर्थिका वह पण्डिता से शीघ्र ही बोली कि जहाँ से तुम इसे लाई हो, वहाँ छोड़ आओ"।।७४।।

उसने कहा-"इसे कहाँ ले जाऊँ। प्रातः काल हो गया है। देखो, सब जगह पक्षी शोर कर रहे हैं।।७५।।

तब अभयमती अपने मन में चिन्ता से दुखी हो गई। क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? इस प्रकार पश्चाताप से पीडित हो गई।।७६।।

हाय, मैने सुन्दर रूपवाले सुदर्शन का सेवन नहीं किया"। वह धीर सुदर्शन भी अपने चित्त में संसार की स्थिति के विषय में स्मरण करता था।।७७।।

अभयमती सोचने लगी, "मैंने उचित भोगों को नहीं भोगा"। सुदर्शन भी निर्मल जिनभाषित सद्धर्म के विषय में विचार करने लगा।।७८।।

अभयमती चित्त में विचार करने लगी कि "मेरा निश्चित मरण आ गया। शुद्धात्मा सुदर्शन भी विचार करने लगा कि "जिनशासन शरण है"।।७६।।

पश्चाताप कर उसने पण्डिता से कहा कि, "इसे जहाँ कहीं भी स्थान पर वेगपूर्वक पहुँचाओ"।।८०।।

धाय ने घबड़ाकर कहा - कि "सूर्य निकल आया है। मेरे द्वारा ले जाना सम्भव नही हैं, जो उचित हो, उसे करो"।।८१।।

(त्रिया चरित्र व सेठ को मृत्युदण्ड आदेश)

उसे सुनकर पापात्मा अभया डरकर मृत्यु को सर्वथा देखकर दोनों स्तन, हृदय और मुख को नाखूनों से विदीर्ण कर, इस प्रकार जोर-जोर से चिल्लाने लगी।।८२-८३।।

दुःशीला, कामलम्पटा, दुष्ट स्त्री क्या नहीं करती है? कुल लक्ष्मी का क्षय करने वाला पातक लोक में कष्टदायक होता है।।८४।।

उस चिल्लाहट को सुनकर और वहाँ पर आकर उस स्थान पर स्थित उस सेठ को देखकर सेवक आश्चर्य से युक्त हो गए।।८५ ।।

राजा को नमस्कार कर वे बोले। "हे राजन्! रात्रि में धृष्ट पापी सुदर्शन ने देवीगृह में आकर, कामातुर होकर अभयादेवी के अति सुन्दर शरीर को विदीर्ण कर दिया। हे प्रभु! उसका क्या करें?" ८६-८७।।

दुःसह उस बात को सुनकर राजा कोप पूर्वक विचार करने लगे- "आश्चर्य है, यह दुष्ट रात्रि में कैसे इस घर में आ गया?।।८८।।

पाखण्डी सेठ परस्त्री लम्पट और दूसरे को ठगने वाला है, मूढ़ मन वाला वह" इत्यादि क्रोध रूपी अग्नि से सन्तप्त हुआ।।८९।।

विचारपूर्वक अपनी रानी की पाप चेष्टाओं को जाने बिना वह पापी राजा उनसे बोला- "शीघ्र ही मार डालो, मार डालो"।।९०।।

यहाँ पर सामान्य चोर मारने योग्य है। दुष्ट मन वाले मेरे द्वारा क्या राज द्रोही, मेरी प्राणप्रिया मे रत मारने योग्य नहीं है।।९१।।

उसे सुनकर कष्टकर वे कठोर स्वर वाले पापी किकंर शीघ्र ही वहाँ

आकर और सिर पकड़कर, राजा के घर से निकल कर, श्मसान की ओर भागे। अविज्ञात स्वभाव वाले दुर्जन क्या नहीं करते हैं?।।९२,९३।।

सौ कष्ट वाले समय में भी वह धीर सुदर्शन चित्त में विचार करने लगा। "यह मेरे कर्म का खेल है।।९४।।

बेचारे पराधीन किकंर मेरा क्या करते हैं? यहाँ पर सुख को लाने वाले सुनिर्मूल्य शीलरूपी रत्न विद्यमान है।।९५।।

निश्चिय रूप से निस्सार इस शरीर से क्या? अर्हन्त भगवान द्वारा प्रणीत संसार का हितकारी, जगत्पूज्य धर्म यहाँ जयशील हो" ।।९६।।

इस प्रकार बुद्धिमान मेरू के समान सुनिश्चत सुदर्शन श्मसान में लिए जाने पर भी अपने मन में ध्यान रूपी घर में सुखपूर्वक ठहरे।।९७।।

ओह! पृथ्वी तल पर हिमालय को जीतने वाली सज्जनों की मनोवृति का वर्णन कौन कर सकता है? प्राणत्याग रूपी विघ्न के आ पड़ने पर भी जो निश्चल रहती है।।९८।।

(नगर में चर्चा)

तब नगर में घोर हाहाकार हुआ। कुछ लोग कहने लगे कि "श्रीमान सेठ सुदर्शन धर्मात्मा है।।९९।।

गृहस्थ के आचार को जानने वाला यह क्या कुकर्म को करेगा? क्या आकाश में चमकता हुआ सूर्य अन्धकार कर सकता है?।।१००।।

श्रीमज्जिनेन्द्र द्वारा कहे हुए शीलरूपी अमृत के समुद्र यह प्राण-त्याग करने पर भी सर्वथा सदाचार का त्याग नहीं करते हैं"।।१०१।।

अन्य नगरवासी लोग बोले "अहो! किसी पापी ने किसी कारण यह किया होगा?"।।१०२।।

इत्यादिक तब नगरवासियों ने पश्चाताप किया। इस संसार में जो सन्त होते हैं, वे दूसरो के दुःख को सहन करने में समर्थ नहीं होते हैं।।१०३।।

(मनोरमा का विलाप)

करोडों कष्टों को करने वाली उस बात को किसी ने शीघ्र ही मनोरमा से कह दिया - "तुम्हारे प्राणवल्लभ, राजपत्नी के प्रसंग से, शील खण्डन के

दोष से राजादेश से कष्टपूर्वक श्मसान में मारे जा रहे हैं''।।१०४-१०५।।

उस बात को सुनकर कम्पित समस्त शरीर वाली मनोरमा शोक से विहल होकर रोती हुई, छाती पीटती हुई, वायु से आहत कल्पवृक्ष से वियुक्त लता के समान पद-पद पर मार्ग में लडखडाती हुई वेगपूर्वक चली।।१०६-१०७।।

"हा नाथ! हा नाथ! गुणों के मन्दिर! तुमने यह क्या किया?" इत्यादिक कथा करती हुई, वहाँ श्मसान में आकर, सर्पों से वेष्टित चन्दनवृक्ष के समान दुष्टों से घिरे हुए सुदर्शन को देखकर उससे यह वचन बोली- "हे नाथ! तुम्हारा क्या विरूप हो गया ?।।१०८-१०९।।

हा नाथ! करोड़ों कष्टों को करने वाले इस दोष का सम्भव किस दुष्ट ने इस प्रकार कर दिया?।।११०।।

तुम सदा शील रूपी जल से पृथ्वी का प्रक्षालन करते थे और जिनेन्द्र द्वारा कहे गए सद्धर्म का पालन करने में तत्पर थे।।१११।।

क्या मेरू अपने स्थान से चलता है? क्या समुद्र मर्यादा को छोड़ता है? हे नाथ! क्या तुम निश्चित ही शील का परित्याग करते हो?।।११२।।

हा नाथ! स्वप्न में भी तुम्हारा व्रत खण्डित नही होता है। सचमुच पश्चिम दिशा में क्वचित् सूर्य उत्पन्न नहीं होता है।।११३।।

अहो करूणासागर नाथ! क्या हुआ? मुझ से बोलो। हे प्राणवल्लभ! तुम वचन रूपी अमृत से मुझे स्वस्थ करो''।।११४।।

इत्यादिक प्रलाप करती हुई जब वह सामने विद्यमान थी, तब धीर सुदर्शन अपने मन में अत्यधिक रूप से विचार करने लगे।।११५।।

''अपने द्वारा उपार्जित कर्मों के अनुसार भ्रमण करने वालों में से संसार में किसका पुत्र है? किसका घर है? किसकी भार्या है? किसके बान्धव हैं? ।।११६।।

संसार में रत्न, स्वर्णादिक सब अस्थिर हैं। सम्पदा नित्य चपल और आधे क्षण के लिए है एवं चंचल है।।११७।।

इस संसार में देव अथवा राजा, देवेन्द्र अथवा फणीन्द्र, शुभ रत्नत्रय

को छोड़कर दूसरा कोई शरण नहीं है।११८।।

यहाँ पर कर्मोदय से अत्यधिक रूप से जो कुछ भी हो जाये, मुझे नित्य श्री पंचपरमेष्ठी की शरण हो''।।११९।।

इस प्रकार मेरू के समान निश्चल आशय वाला बुद्धिमान् चतुरोत्तम सुदर्शन जब तक वैराग्य का चिन्तन कर रहा था।।१२०।।

(यक्ष द्वारा उपसर्ग निवारण)

जब तक कि कोई अत्यधिक बुरे अभिप्राय वाला उसके गले पर तलवार का प्रहार करता, तब तक उसके शील के पुण्य से, आसन के कम्पन से शीघ्र ही जैनधर्म के प्रति अत्यधिक स्नेह रखने वाले, जिनेन्द्र भगवान के चरणकमलों के भ्रमर यक्षदेव ने आकर, उन समस्त दुष्ट राजसेवकों को रोक दिया। सम्यग्दृष्टि जीव साधर्मियों के मानभंग को सहन नहीं करता है।।१२१-१२३।।

इस प्रकार परम आनन्द से भरे हुए महाधीर देव ने धर्म के प्रति अनुराग के कारण उसके उपसर्ग का निराकरण कर दिया।।१२४।।

दिशाओं के मुख को सुगन्धित करने वाली शीघ्र ही फूलों की वर्षा कर सज्जनों के प्रति भक्ति से युक्त बुद्धिमान् यक्ष ने सेठ की पूजा की।।१२५।।

वहाँ पर स्थित भव्यों ने परम आनन्द से भरे होकर सज्जनों को आनंद देने वाला जय घोष किया।।१२६।।

उसे सुनकर धात्रीवाहन नामक दुष्ट राजा ने पुनः सुनिष्ठुर भृत्यों को भेजा।।१२७।।

स्फुरायमान प्रभा वाले परमोदय, बुद्धिमान् यक्षदेव ने उन्हें भी कीलित कर दिया।।।१२८।।

(यक्ष व राजा में युद्ध)

अनन्तर कोप से जिसका शरीर कम्पित हो रहा है, ऐसा राजा स्वयं चतुरंग सेना लेकर उसके वध के लिए आ गया।।१२९।।

समर्थ यक्षदेव भी हाथी, घोड़े आदि की मायामयी सेना को बनाकर वेगपूर्वक सामने खड़ा हो गया।।१३०।।

भयशीलों को भयप्रदान करने वाला उन दोनों का चमत्कारी गाढ़ महायुद्ध बहुत देर तक हुआ।।१३१।।

क्षय करने वाले उस युद्ध में शूर-शूरों से, अश्वारोही-अश्वारोहियों से, दण्डधारी-दण्डधारियों से तथा तलवार धारण करने वाले खड्गधारियों से लड रहे थे।।१३२।।

उस बडे संग्राम में राजा के यशोराशि के समान उज्वल छत्र को देव ने ध्वज सहित तोड दिया।।१३३।।

जिस प्रकार सिंहनाद से डरा हुआ मतवाला सिंह भाग जाता है उसी प्रकार जिसके प्राण सन्देह में पड़ गए हैं, ऐसा राजा डरकर भाग गया।।१३४।।

यक्ष निष्ठुर स्वरों में धमकाता हुआ उसके पीछे लग गया। "तुम बेचारे मेरे आगे प्राणरक्षा के लिए कहाँ जाते हो?।।१३५।।

स्त्री से ठगे गए रे दुष्ट! व्यर्थ में ही तुमने व्रतधारी सेठ के ऊपर कष्टकर उपसर्ग कराया।।१३६।।

यदि तुम्हें जीने की अभिलाषा हो तो जिनेन्द्र भगवान् के चरणकमलों की सार रूप सेवा को करने वाले सेठ की शरण में जाओ"।।१३७।।

(शील का प्रभाव)

तब राजा उस सुदर्शन की शरण में गया । उसने कहा कि - "हे श्रेष्ठ! मुझ शरणागत की शीघ्र रक्षा करो, रक्षा करो ।।१३८।।

ताडित और तापित होने पर भी स्वर्ण के समान सुशोभित छवि वाले सपीडित सज्जन लोग मृदुता का परित्याग नहीं करते हैं।।१३९।।

परमेष्ठी के समान प्रसन्न बुद्धिवाले उस सेठ ने उस बात को सुनकर अपने हाथ में शीघ्र ही उस राजा को उठाया और आश्वस्त कर, उसकी रक्षा करने के लिए उस यक्ष से पूछा- "आप कौन हैं? तब यक्षदेव शीघ्र सेठ को प्रणाम कर, अभयमती के किए हुए और अपने आगमन के विषय में बताकर अपने सार रूप प्रभाव से उस सब सेना को उठाकर, स्वर्णमयी दिव्य वस्त्रादिक से सुदर्शन की पूजा कर जिन धर्म के प्रभाव को भली भाँति प्रकाशित कर सुख पूर्वक चला गया।।१४०-१४३।।

सच बात है, श्रीमज्जिनेन्द्र द्वारा कथित धर्म, कर्म में तत्पर कौन शीलवन्त इस संसार में उत्तम देवों के द्वारा पूज्य नहीं हैं?।।१४४।।

शील दुर्गति का नाश करने वाला है, शुभकर है, शील कुल का उद्योतक है, शील संसार रूपी सुख और प्रमोद का जनक है, लक्ष्मी और यश का कारण है, शील अपने व्रत की रक्षा करने वाला, गुणकर और संसार से पार लगाने वाला है। श्री जिनभाषित शील पवित्र है। हे भव्यों! लक्ष्मी की प्राप्ति के लिए उस शील का सेवन करो।।१४५।।

इस प्रकार श्री सुदर्शन चरित्र में सेठ सुदर्शन पर उपसर्ग का वर्णन करने वाला सातवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

अष्टमोऽधिकार:

अनन्तर सेठ के पुण्य पावन महाशील के प्रभाव को सुनकर राजा की रानी भय से त्रस्त पापकर्म से, दुर्बुद्धि गले में पाश डालकर मरकर दुष्टात्मा पापकारिणी व्यन्तरी देवी हुई।।१-२।।

(गणिका की प्रतिज्ञा)

धृष्टमानस उस पण्डिता धाय ने भी चम्पापुरी से भागकर पाटलीपुत्र में आकर वहाँ पर स्थित देवदत्तिका नामक वेश्या से अपना चरित्र कहा। वेश्या ने भी उसे सुनकर धाय से गर्व से कहा।।३-४।।

''मूढ़ मन वाली कपिला ब्राहम्णी क्या जानती है? भय से त्रस्त वह अभया क्या अधिक चातुरी जानती हैं?।।५।।

काम रस की कूपी, कामशास्त्र प्रवीण और संसार को ठगने में तत्पर मैं सब जानती हूँ।।६।।

मेरे कटाक्ष रूपी बाणों के समूह से जो हरि आदि मारे गए और व्रतादिक छोडकर भाग गए (उनके सामने) तुम्हारा वणिक् पुत्र कौन होता है?।।७।।

उर्वशी ने जिस प्रकार ब्रह्मा का सेवन किया था, उसी प्रकार मैं अनुत्तर सुदर्शन का अपनी इच्छा से यदि प्रगाढ सेवन करती हूँ तो मैं देवदत्तिका हूँ''।।८।।

उसके सामने दुष्ट बुद्धि वाली उस गणिका ने इस प्रकार प्रतिज्ञा की। सच है, कामातुर नारी पुरूषों के अन्तर को नहीं जानतीं हैं।।९।।

जन्मान्ध व्यक्ति जिस प्रकार रूप को नहीं जानता है, मतवाला व्यक्ति जिस प्रकार तत्व के लक्षण को नहीं जानता है, उसी प्रकार अन्य कामी शीलवानों की स्थिति को नहीं जानता है।।१०।।

(राजा का पश्चाताप व क्षमा याचना)

अनन्तर राजा यक्ष के कहने के अनुसार अपनी स्त्री के सुनिश्चित

दुराचार को सुनकर पश्चाताप कर, ''हाय ! दुष्ट स्त्री से वंचित, विचार शून्य मुझ मूढ़ चित्त ने साधु को पीड़ित किया''।।११-१२।।

इस प्रकार शीघ्र ही अपने मन में विचार कर, भक्तिपूर्वक सुदर्शन को प्रणाम कर जोर देकर कहता है- ''हे पुरूषोत्तम!।।१३।।

अज्ञान से युक्त मैंने तुम्हें वधादिकृतदोष दिया है। फिर भी मेरे इस दुराचार के विस्तार को आप क्षमा करें।।१४।।

तुम सदा जिनधर्म को जानने वाले हो, तुम सदा शील के सागर हो, तुम सदा शान्ति के सागर हो, तुम सदा दोषों से रहित हो, तुम सदा दोषों से रहित हो।।१५।।

अहो! जिस प्रकार ''मेरू'' पर्वतों के मध्य महान् है, ''क्षीरसागर'' समुद्रों में महान है, उसी प्रकार आप भव्य जीवों में महान हैं।।१६।।

हे दयारस के समुद्र! वणिकवंश शिरोमणि। तुम मेरे ऊपर कृपा कर शीघ्र ही आधा राज्य ग्रहण करो''।।१७।।

(सेठ की प्रतिज्ञा)

उसे सुनकर वह बोला- ''हे राजन्! तीनों भवनों में शुभ और अशुभ के फलस्वरूप प्राणियों को सुख और दुःख होते हैं।।१८।।

पृथ्वी तल पर आज मेरे कर्म जैसा- तैसा हो गया। किसे दोष दिया जाय? तुम प्रजा के हितकारी राजा हो।।१९।।

हे प्रभु! सुनों, मैने पहले मन में प्रतिज्ञा की थी कि यदि इस उपसर्ग में मेरा उद्धार हो जाएगा तब निश्चित रूप से, पाँच महाव्रतों का समूह ग्रहण करूँगा। सुयुक्ति से पाणिपात्र में भोजन करूँगा।।२०-२१।।

अतः हे राजन् ! राज्य लक्ष्मी के स्वीकार करने के विषय में मेरा नियम है। इस प्रकार आग्रहपूर्वक मन, वचन, कायपूर्वक सबको क्षमा करो''।।२२।।

यह ठीक ही है कि लोक में सज्जनों के लिए क्षमासार रूप आभूषण है। जिस प्रकार समस्त क्रियाकाण्ड में सम्यग्दर्शन सुख का कारण है।

(जिनवंदना)

अनन्तर भूतल को पवित्र करने वाले जिनालय में जाकर इन्द्र और चक्रवर्ती के द्वारा अर्चित जिनों की वहाँ पूजा कर, अत्यधिक स्तुति की ''हे जिनपुंगव! तुम्हारी जय हो। जन्म, जरा और मरण रूपी रोग कि लिए हे श्रेष्ठ वैद्य! तुम्हारी जय हो।।२४-२५।।

समस्त दोषों को क्षय करने वाले, तीनों लोकों के नाथ ईश ! आपकी जय हो। तीनों लोकों के भव्य जीव के समूह के लिए सूर्य रूप आपकी जय हो।।२६।।

लोकालोक के प्रकाशक केवलज्ञानी! तुम्हारी जय हो। यहाँ पर करोडों विघ्नों के विनाशक जिननाथ! तुम्हारी जय हो।।२७।।

धर्मतीर्थ के स्वामी, परम आनन्ददायक! तुम्हारी जय हो। समस्त तत्वार्थसागर की वृद्धि के लिए चन्द्रमा स्वरूप तुम्हारी जय हो।।२८।।

समस्त प्राणियों का हित करने वाले, सबके स्वामी, सर्वज्ञ! तुम्हारी जय हो। हे शीलसागर, जितकाम! तुम जयशील हो।।२९।।

हे देव! तुम तीनों लोकों में पूज्य हो, तुम सदा तीनों लोकों के गुरू हो, तुम सदा तीनों लोकों के बन्धु हो, तुम सदा तीनों लोकों के स्वामी हो।।३०।।

कर्मों को जीतने से तुम परमार्थ रूप से जिन हो। तुम ही रत्नत्रय के सारस्वरूप मोक्षमार्ग हो।।३१।।

हे पथ को जानने वाले! पाप रूपी शत्रु का हरण करने से तुम हरि हो। भव्यों को सुखकारी होने से तुम मोक्षदायी शंकर हो।।३२।।

ज्ञान की अपेक्षा भुवनव्यापी होने से तुम विश्वपालक विष्णु हो। तुम सदा सुगति को ले जाने वाले हो। तुम धर्मतीर्थ के करने वाले बुद्धिमान् हो।।३३।।

तुम दिव्य चिन्तामणि हो। निश्चित रूप से तुम कल्पवृक्ष हो। तुम्हीं यहाँ इष्ट अर्थ की पूर्ति करने वाले कामधेनु हो।।३४।।

तुम सिद्ध, बुद्ध, निराबाध, विशुद्ध और निरंजन हो। देवेन्द्र के द्वारा समर्चित चरणकमल तुम देवाधिदेव हो।।३५।।

संसार के द्वारा वन्दन करने योग्य! तुम्हें नमस्कार हो। तीनों लोकों के गुरू! तुम्हें नमस्कार हो। हे प्रभुश्रेष्ठ, परमानन्ददायक! तुम्हें नमस्कार हो।।३६।।

मेरी जिनराज के प्रति अत्यधिक सुखदायिनी, दोनों लोकों में हितकारी, नित्य समस्त शान्ति करने वाली भक्ति हो''।।३७।।

(सेठ सुदर्शन के पूर्व भव)

इत्यादि जिनेन्द्र भगवान की सम्पदा प्रदान करने वाली सम्यक् स्तुति कर, पुनः-पुनः नमस्कार कर अनन्तर भव्य शिरोमणि, विमलवाहन नामक ज्ञानी गुरू को नमस्कार कर। शुद्ध रत्नत्रय से युक्त तथा कुमत रूपी महान् अन्धकार के लिए सूर्य स्वरूप उनसे बोला, ''हे समस्त प्राणियों का हित करने वाले स्वामी! हे मुनि! मेरे पूर्वजन्म के सम्बन्ध में आप कहिए''।।३८-४०।।

कृपासिन्धु, भव्यजनों के बन्धु वे मुनि भी बोले - ''हे महाभव्य सुदर्शन! तुम मेरे द्वारा कहे हुए अपने पूर्वभव के विषय में सुनों।।४१।।

धर्म-कर्म से पवित्र इस भरत क्षेत्र के सुविख्यात विन्ध्यदेश के कौशल नामक नगर में भूपाल नामक राजा था। उसकी वसुन्धरा रानी हुई। उन दोनों का शूरवीर, विचरण लोकपाल नामक पुत्र था।।४२-४३।।

इस प्रकार वह भूपाल पुत्र पौत्रादि परिवार से घिरा हुआ अपने पुण्य से राज्य करता हुआ सुखपूर्वक स्थित था।।४४।।

एक बार उस राजा के मनोहर सिंह द्वार पर लोगों ने ''हे देव! रक्षा करो, रक्षा करो'', इस प्रकार क्रन्दन किया।।४५।।

उसे सुनकर राजा ने अनन्तबुद्धि नामक मंत्री से कहा-''यह क्या है'' वह मंत्री बोला-''हे राजन! सुनों''।।४६।।

यहाँ से दक्षिण दिशा की ओर विन्ध्यागिरि पर महाबली व्याघ्र नामक भील है। उसकी कुरंगी नामक प्रिया है।।४७।।

वह दुष्टात्मा, व्याघ्र के समान क्रूर है अथवा अधम यम है। वह अहंकार के मद से मत्त रहता है और नित्य धनुर्दण्ड लिए रहता है।।।४८।।

हे देव! वह पापी प्रजा को सदा पीड़ित करता रहता है। अतः हे प्रभो!

यह प्रजा अत्यधिक क्रन्दन कर रही है"।।४६।।

मंत्री के वाक्य को सुनकर भूपाल राजा क्रोध से बोला- "मेरी प्रजा को दुःख देने वाला यह दुर्बुद्धि भील कौन है?"।।५०।।

तथा सेनापति को आदेश दिया "शीघ्र ही जाओ। दर्प में स्थित मेरे शत्रु को जीतकर आओ"।।५१।।

सचमुच, जो प्रजापालन में तत्पर प्रसिद्ध उत्तम राजा होते हैं, वे प्रजा को सताना सहन नहीं करते हैं।।५२।।

तब सार रूप सेना से युक्त सेनापति शीघ्र ही जाकर वेग पूर्वक भिल्लराज के द्वारा जीत लिया गया।।५३।।

पश्चात् मानभंग से संत्रस्त होकर वह अपने नगर में आ गया। पुण्य के बिना लोक में कहाँ शुभ विजय प्राप्त होती है?।।५४।।

अनन्तर कोप से जाते हुए भूपाल नामक राजा से लोकपाल नामक पुत्र प्रणाम कर बोला! "हे राजन्! सुनों।।५५।।

मुझ सेवक के रहते हुए श्रीमान क्यों जा रहे हैं?" इस प्रकार कहकर समस्त सार रूप सेना के सहित जाकर, युद्ध कर, उस भील को मारकर अपने नगर को आ गया। लोक में अपने पिता के द्वारा जो दुःसाध्य हो, उसे उसका पुत्र सिद्ध कर देता है।।५६-५७।।

वह भिल्लपति व्याघ्र भी मरकर कर्म के वश में किया गया गोकुल में कुत्ता होकर कदाचित वह कृतज्ञ, ग्वाले की स्त्री के साथ कौशाम्बी आकर जिनालय देखकर उसका आश्रय लेकर किंचित शुभ कर्म से युक्त हुआ।।५८,५९।।

उसने मरकर चम्पा में मनुष्य जन्म पाया। सिहंप्रिय नाम वाले किसी शिकारी की सिहिनी नामक स्त्री का पुत्र होकर, वहाँ मरकर पुनः वह चम्पा में सुभग नामक ग्वाला हुआ। वह तुम्हारे पिता सेठ के घर में ग्वाला हुआ। वह प्रोढ बालक वृषभदास की गायों का पालक हुआ।।६०-६१।।

गायों के भली-भाँति पालन से वह उत्तम राजा के समान जनप्रिय हुआ? वह कवि के काव्य के समान सबको मनोहर छन्द का ज्ञाता

हुआ।।६३।।

वन में क्रीडा करता हुआ वह हरि के समान लगता था अथवा वृक्षों पर भ्रमण करते हुए वह कपि जैसा लगता था। अथवा वह पुष्पों का आस्वादन करने वाला भ्रमर था, वह सुस्वर (अच्छे सुर वाला) अथवा सुरोत्तम था।।६४।।

उसका मन नित्य निःशंक रहता था अथवा अपने आचरण में वह सत् दृष्टि वाला था। कार्यों में वह अप्रमादी रहता था और बालक होने पर भी योद्धा था।।६५।। (चारण मुनीन्द्र का आगमन)

एक बार पडती हुई शीत के समुह से आक्रान्त, संसार के लोगों को कम्पित करने वाले सुदुःसह माघ मास में वह सुभग भी, सन्ध्या के समय सेठ की गायों के समुह को लाकर रम्य वन में आए हुए चारण मुनीन्द्र को देखकर, जो संसार समुद्र के लिए नौका स्वरूप थे, भव्य जनों के सुख के कारण थे, एकत्व भावना से युक्त थे, बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से रहित थे।।६६-६८।।

रत्नत्रय से युक्त थे, चार ज्ञान से समन्वित थे, पाँच प्रकार के आचार विचार को जानने वाले थे, मोक्ष साधक थे।।६९।।

पंच परमेष्ठी के प्रति निरन्तर भक्ति के समूह से युक्त थे। छः आवश्यक रूपी सत्कर्म का पालन करने में तत्पर थे।।७०।।

छः काय के जीवों के प्रति दया रूपी लता को सिंचन करने के लिए जो बडे मेघ थे, छः प्रकार की लेश्याओं के विषय में भली भाँति विचारज्ञ थे एवं सप्त तत्व के प्रकाशक थे।।७१।।

सात नरकों के दुःखों के समूह का निवारण जानने में जो श्रेष्ठ थे, आठ कर्मों के क्षय में तत्पर थे, आठ प्रकार के परम मदों को हरने वाले थे।।७२।।

नव प्रकार के ब्रह्मचर्य से सम्पन्न थे, नव प्रकार के पदार्थों के ज्ञाता थे, जिनेन्द्र भगवान द्वारा कहे हुए दश धर्मों का जो पालन करना जानते है।।७३।।

शास्त्रोक्त ग्यारह प्रकार की प्रतिमाओं के प्रतिपादक थे, कहे हुए बारह प्रकार के तप के भार को उठाने में नायक थे।।७४।।

बारह प्रकार की व्यक्त अनुप्रेक्षाओं के चिन्तन करने में लगे रहते थे, तेरह प्रकार के जिनेन्द्र कथित सुन्दर चारित्र से मण्डित थे।।७५।।

चौदह गुणस्थानों के विषय में विचार करने में उनका मन लगा रहता था। वे पन्द्रह प्रकार के प्रमादों से रहित और गुणों के समुद्र थे।।७६।।

वे षोड़श कारण भावनाओं के भाव को जानने वाले थे और सत्रह प्रकार के असंयमों से सदा रहित थे।।७७।।

वे अठारह प्रकार के असम्पराय को जानते थे और करूणा के समुद्र थे। उन्नीस प्रकार के कहे गए नाथ के अध्ययन से युक्त थे।।७८।।

कहे गए बीस असमाधिस्थान से रहित थे और कहे गए इक्कीस सबलों के विचारक थे।।७९।।

बाईस प्रकार के मुनिकथित परीषहों को जीतने में समर्थ थे और जिनकथित तेईस प्रकार के श्रुतध्यान में लगे हुए थे।।८०।।

चौबीस तीर्थकरों की साररूप सेवा से युक्त थे। पच्चीस भावनाओं के आराधक थे और विश्व वन्दित थे।।८१।।

धर्म की सम्पत्तिस्वरूप पच्चीस क्रियाओं के ज्ञाता थे और छब्बीस क्षमाओं (भूमियों) के ज्ञाता थे।।८२।।

सत्ताईस प्रकार के मुनि के गुणों से युक्त और गुणों के आलय थे। साररूप प्रसिद्ध २८ मूलगुणों से युक्त थे।।८३।।

उन्तीस प्रकार के कहे गए पाप के प्रति आसक्ति का क्षय करने वाले थे। कहे गए तीस मोहनीय कर्म के भेदों के उत्कृष्ट भेदक थे।।८४।।

इकतीस संख्या के कहे गए कर्म के परिपाक को जानने वाले थे। वीतराग भगवान के बत्तीस उपदेशों में उन्होंने निश्चय किया था।।८५।।

वे तेतीस प्रकार की आसादनाओं के क्षय कारक थे और चौंतीस अतिशयों की सम्पति को दिखाने वाले थे।।८६।।

भावार्थ- एक अनाचार परिणाम, दो रागद्वेषपरिणाम, तीन दंड-

दुष्ट मन,दुष्ट वचन, दुष्ट काय जीव को दण्ड देते हैं अतः इन्हें दण्ड कहते है।।

तीन गुप्तियाँ	-	मन गुप्ति, वचन गुप्ति, काय गुप्ति।
तीन गारव	-	ऋद्धि गारव, रस गारव, सात गारव।
चार कषाय	-	क्रोध, मान, माया, लोभ।
चार संज्ञा	-	आहार, भय, मैथुन, परिग्रह।
पाँच समितियाँ	-	ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेपण, व्युत्सर्ग समिति।
पाँच महाव्रत	-	अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह।
छः आवश्यक	-	समता, चतुर्विंशतिस्तव, वंदना, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग।
छः जीव निकाय ।	-	पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस काय
सात भय	-	इहलोक, परलोक, मरण, वेदना, आकस्मिक, अत्राण, अगुप्ति।
आठ मद	-	ज्ञान, पूजा, कुल, जाति, तप, बल, ऋद्धि, शरीर मद।
नव ब्रह्मचर्य गुप्तियाँ	-	१. तिर्यंचिनी, २. मनुष्यिनी, ३. देवियों में मन, वचन,काय से विषय का सेवन नहीं करना।
दस श्रमणधर्म	-	उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, शौच, सत्य, संयम, तप, त्याग, अकिंचन, ब्रह्मचर्य।

ग्यारह श्रावक प्रतिमाऐं :- दर्शन, व्रत, सामायिक, प्राषधोपवास, सचित्तत्याग, रात्रिभुक्ति त्याग (दिवा मैथुन त्याग), ब्रह्मचर्य, आरम्भत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमति-त्याग, उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा।

बारह भिक्षु प्रतिमाऐं- महा सत्त्वशाली व शक्तिशाली मुनि (उत्तम संहनन वाला मुनि) इस भिक्षु प्रतिमा विधि का अनुष्ठान कर सकता है। ''इस देश में रहते हुए एक मास के अन्दर अमुक-अमुक दुर्लभ आहार मिलेगा तो

ग्रहण करूँगा अन्यथा नहीं'' ऐसी प्रतिज्ञा करके उस मास के अन्तिम दिन प्रतिमा-योग धारण करता है, यह एक प्रतिमा हुई।

पूर्वोक्त आहार से शतगुणित उत्कृष्ट दुर्लभ ऐसे भिन्न-भिन्न आहार का व्रत ग्रहण करता है यह व्रत दो, तीन, चार, पाँच, छः और सात मास तक क्रमशः चलता है, प्रत्येक महीने के अन्तिम दिन प्रतिमायोग धारण करता है। ये सात भिक्षु प्रतिमाऐं हैं।

पुनश्च सात सात दिनों में पूर्व आहार की अपेक्षा से शत गुणित उत्कृष्ट और दुर्लभ ऐसे भिन्न-भिन्न, आहार तीन बार लेने की प्रतिज्ञा करता है, आहार की प्राप्ति होती है तो तीन, दो, और एक ग्रास लेता, ये तीन भिक्षु प्रतिमायें हैं तदनन्तर रात्रि और दिन में प्रतिमायोग धारण करता है पुनः प्रतिमायोग से ध्यानस्थ होता है ये दो भिक्षु प्रतिमायें हैं। इससे पहले अवधि और मनः पर्ययज्ञान प्राप्त होते हैं, अनन्तर सूर्योदय होने पर उक्त महामना महा धैर्यशाली मुनिराज केवलज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं। इस तरह ये बारह भिक्षु प्रतिमायें जिनागम में वर्णित हैं।

तेरह क्रियायें- पाँच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति।

चौदह जीवसमास-बादर और सूक्ष्म एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, असैनी पंचन्द्रिय, सैनी पँचेन्द्रिय, सात युगल पर्याप्तक और अपर्याप्तक के भेद से १४ प्रकार के जीव समास।

पन्द्रह प्रमाद - ५ इन्द्रिय - स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण।
४ विकथा- स्त्रीकथा, राजकथा, चोरकथा, भोजनकथा।
४ कषाय- क्रोध, मान, माया, लोभ।
निद्रा और स्नेह।

सोलह प्रवचन भेद - ७ विभक्तियाँ- प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, सप्तमी।३ काल (भूतकाल, वर्तमानकाल, भविष्यकाल।) ३ लिंग (स्त्रीलिंग, पुल्लिंग, नपुंसकलिंग।) वचन (एकवचन, द्विवचन, बहुवचन।)

सत्रह असंयम - हिसांदि पाँच पाप, पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय, मन, वचन, काय की कुचेष्टा।

अठारह असम्पराय - सम् अर्थात् समीचीन (श्रेष्ठ प्रधान 'आय' अर्थात् पुण्य का आगमन) जिनसे होता है उन्हें सम्पराय कहते हैं, इसके निषेध करने वाले साधनों को असंपरायिक कहते हैं वे निम्न प्रकार के हैं -

उत्तमक्षमादि १० प्रकार के धर्म, ईर्यादि ५ प्रकार की समिति तथा मन-वचन-काय रूप गुप्ति का पालन नहीं करना।

उन्नीस नाथाध्ययन - (धर्मकथायें)- १.उक्कोडनाग- श्वेतहस्ती नागकुमार की कथा, २. कुम्भ-कर्म कथा। ३. अंडय-अण्डज कथा ५ प्रकार की (१ कुक्कुट कथा, २. लापसपल्लिकास्थित शुक कथा, ३. वेदक शुक कथा, ४. अगंधन सर्प कथा, ५. हंसयूथबन्धनमोचन कथा), ४. रोहिणी कथा ५. शिष्यस कथा, ६. तुंब-क्रोध से दिये हुए कटुतुम्बी के भोजन करने वाले मुनि की कथा, ७. संघादे-समुद्रदत्तादि ३२ श्रेष्ठ पुत्रों की कथा जो सभी अतिवृष्टि के होने पर समाधि को धारण कर स्वर्ग को प्राप्त हुए, ८. मादंगिमल्लि-मातंगिमल्लि कथा। ९. चंदिम-चन्द्रवधे कथा, १०. तावछेवप- सगरचक्रवर्ती की कथा, ११. करकण्डु राजा की कथा, १२. तलाय-वृक्ष के एक कोटर में बैठे हुए तपस्वी की कथा, १३. किण्णे-चावलों के मर्दन में स्थित पुरूष की कथा, १४. सुसुकेयः- आराधना ग्रन्थ में कही हुई शुशुंमार सरोवर संबंधी कथा, १५. अवरकंक - अवरकंका नामक पत्तन में उत्पन्न होने वाले अंजनचोर की कथा, १६. नंदीफल-अटवी में स्थित, बुभुक्षा से पीड़ित धन्वंतरि, विश्वानुलोम और भृत्य के द्वारा लाये हुये किंपाक फल की कथा, १७. उदकनाथ कथा, १८. मण्डूक कथा- जाति स्मरण होनेवाले मेंढक की कथा, १९. पुंडरीगो-पुंडरीक नामक राजपुत्री की कथा।

अथवा-गुणस्थान १४, जीवसमास १५, पर्याप्ति १६, प्राण१७, संज्ञा १८, मार्गणा १९ ये १९ प्रकार के नाथाध्ययन समझने चाहिए। अथवा-

घातिया कर्म के क्षय से होनेवाले १० अतिशय तथा ९ प्रकार की लब्धि सम्बन्धी जिनवाणी का यथा समय अध्ययन करना।

बीस असमाधिस्थान - रत्नत्रय का आराधन करते हुए मुनि के चित्त में किसी प्रकार की आकुलता का नहीं होना ही समाधि है और उससे विपरीत

असमाधि है, उसके ये २० स्थान हैं।

अदिट्ठ- बिना देखे प्रवृत्ति करना २. डवडवचर- ईर्या समिति रहित गमन करना। ३. अपमज्जिदं-अप्रमार्जित उपकरणादि को ग्रहण करना, उठाना आदि। ४. रादिणीयपडिहासीरादिणोअ अर्थात दीक्षादि से जो ज्येष्ठ हैं उनका अनादर करके कथन करना अधिसेज्जासणं - ज्येष्ठ के ऊपर अपनी शय्या या अपना आसन करना । ६. क्रोधी-दीक्षा से ज्येष्ठ के वचन पर क्रोध करना। ७. थेर विवादंतराएय- दीक्षा से ज्येष्ठ मुनि आदिकों के साथ, बीच में प्रविष्ट होकर वार्तालाप करना। ८. उवघादं- दूसरे का तिरस्कार करके भाषण करना। ९. अणुवीचि-आगम भाषा का त्याग करके भाषण करना। १०. अधिकरणी- आगम के विरोध से अपनी बुद्धि के द्वारा तत्व का कथन करना। ११. पिट्ठिमांसपडिणीगो- पीठ पीछे विपरीत वचन कहना (पर निन्दा करना)। १२. असमाहिकलहं- दूसरे के आशय को बदलकर अन्यका नाम लेकर झगड़ा पैदा कर देना। १३. झंझा-थोडा झगडा करके रोष उत्पन्न कर देना। १४. सहकरेपढिदा-सब लोगों की आवाज को दबाकर उच्चध्वनि से पढना। १५. एसणामिदि-बिना शोधे भोजन करना। १६. सूरप्पमाणभोजी-पहलवान /शूरवीर योद्धा के योग्य गरिष्ठ भोजन करना। १७. गाणंगगणिगो- बहुत अपराध करने वाला मुनि एक गण से दूसरे गण में भेज दिया जाता है (अपनी गलती नहीं स्वीकार करना)। १८. सरक्खरावादे-धूल सहित पैरों का जल में प्रवेश करना तथा जल में गीले पैर हो जानेपर धूल में प्रवेश करना। १९. अप्पमाणभोजी-अप्रमाण भोजन करना अर्थात् भूख से ज्यादा भोजन करना। २०. अकाल सज्झाओ-अकाल में स्वाध्याय करना।

इक्कीस सबल क्रियायें- ५ प्रकार की रस सम्बन्धी (खट्ठा, मीठा, कडुवा, कषायला, चरपरा), ५ प्रकार की वर्ण सम्बन्धी (काला, पीला, लाल, हरा, सफेद), दो प्रकार की गंध सम्बन्धी (सुगन्ध, दुर्गन्ध) तथा आठ प्रकार की स्पर्श सम्बन्धी (हल्का, भारी, ठंडा, गरम, रूखा, चिकना, कड़ा, नरम) और २१वीं पहले छोड़े हुए अपने सम्बन्धियों के ऊपर स्नेह सहित क्रिया, जिसका

नाम है विरदिजणरागसहिदा।

बाईस परीषह- क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नाग्न्य, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान, अदर्शन।

तेवीस सूत्रकृत अध्ययन-

१. समए - (समय अधिकार), अध्ययन काल के प्रतिपादन के द्वार से त्रिकाल स्वरूप का प्रतिपादन करता है।

२. वेदालिंझे-(वेद लिंग अधिकर)-तीन वेदों के स्वरूप का प्रतिपादन करता है।

३. उवसग्गं-(उपसर्ग का अधिकार)-४ प्रकार के उपसर्गों का निरूपण करता है।

४. इत्थिपरिणामे -(स्त्री परिणाम)-स्त्रियों के स्वभाव का वर्णन करता है।

५. णिरयंतर- (नरकान्तर अधिकार)- नरकादि चतुर्गतियों का वर्णन करता है।

६. वीरथुदी- (वीर स्तुति अधिकार)- २४ तीर्थकरों के गुण का वर्णन करता है।

७. कसीलपरिभासिए- (कुशील परिभाषा का अधिकार) - कुशीलादि ५ प्रकार के पार्श्व साधुओं का वर्णन करता है।

८. विरिए (वीर्याधिकार)-जीवों की तरतमता से वीर्य (शक्ति) का वर्णन करता है।

९. धम्मोय (धम्माधिकार) - धर्म और अधर्म के स्वरूप का वर्णन करता है।

१०. अग्ग- (अग्राधिकार) - श्रुत के अग्रपदों का वर्णन करता है।

११. मग्गे- (मार्गाधिकार) - मोक्ष और स्वर्ग के स्वरूप तथा कारण का वर्णन करता है।

१२. समोवसरणं-(समवसरणादि अधिकार) -२४ तीर्थकरों के

समवशरण का वर्णन करता है।

१३. तिकालगंथहिदे- (त्रिकाल ग्रन्थ का अधिकार) -त्रिकाल गोचर अशेष परिग्रह के अशुभ रूप का वर्णन करता है।

१४. आदा-(आत्माधिकार)- जीव के स्वरूप का वर्णन करता है।

१५. तदित्थगाथा- (तदित्यगाथाधिकार)- वाद के मार्ग का प्ररूपण करता है।

१६. पुण्डरिका- (पुण्डरिकाधिकार)- स्त्रीयों के स्वर्गादि स्थानों में स्वरूप का वर्णन करता है।

१७. किरियठाणेय- (क्रियास्थानाधिकार)-तेरह प्रकार की क्रियाओं के स्थानों में स्वरूप का वर्णन करता है।

१८. आहारय परिणामे- (आहारक परिणाम का अधिकार) :- सर्व धान्यों के रस और वीर्य के विपाक को तथा शरीर में व्याप्त सात धातुओं के स्वरूप का वर्णन करता है।

१९. पच्चक्खाण- (प्रत्याख्यान का अधिकार) - सर्वद्रव्य के विषय से सम्बन्ध रखने वाली निवृत्तियों का वर्णन करता है।

२०. अणगारगुणकित्ति - (अनगारगुणकीर्तन का अधिकार)-मुनियों के गुण का वर्णन करता है।

२१. सुदा-(श्रुताधिकार)- ऋतु के फल का वर्णन करता है।

२२. णालंदे- (नालंदाधिकार)- ज्योतिषियों के पटल का वर्णन करता है।

२३. सुछयडज्झाणाणि तेवीसं- सूत्रकृत अध्ययन से २३ संख्या वाले हैं। द्वितीय अंग में श्रुतवर्णन के अधिकार के अन्वर्थ संज्ञा वाले हैं।

चउवीस अरहंत-(२४ तीर्थकर) -

१. वृषभदेव जी	**२. अजितनाथ जी**	**३. सम्भवनाथ जी**
४. अभिनन्दन जी	**५. सुमतिनाथ जी**	**६. पद्मप्रभ् जी**
७. सुपार्श्वनाथ जी	**८. चन्द्रप्रभु जी**	**९. पुष्पदन्त जी**
१०. शीतलनाथ जी	**११. श्रेयांसनाथ जी**	**१२. वासुपूज्य जी**

१३. विमलनाथ जी	१४. अनन्तनाथ जी	१५. धर्मनाथ जी
१६. शान्तिनाथ जी	१७. कुन्थुनाथ जी	१८. अरहनाथ जी
१९. मल्लिनाथ जी	२०. मुनिसुव्रत जी	२१. नमिनाथ जी
२२. नेमिनाथ जी	२३. पार्श्वनाथ जी	२४. महावीर जी।

इन २४ तीर्थंकर देवों की यथाकाल वंदनादि करना।

पणवीस भावणा

(अहिसाव्रत की ५ भावानायें।)

१. वाग्गुप्ति, २. मनोगुप्ति, ३. ईर्यासमिति, ४. आदाननिक्षेपण समिति ४. आलोकितपान भोजन।

सत्यव्रत की ५ भावनायें- १. क्रोधप्रत्याख्यान २. लोभप्रत्याख्यान ३. भीरूत्वप्रत्याख्यान ४. हास्यप्रत्याख्यान ५. अनुवीचि भाषण(शास्त्र की आज्ञानुसार निर्दोष वचन बोलना)।

अचौर्यव्रत की ५ भावनायें- १. शून्यागारवास-पर्वतों की गुफा, वृक्ष की कोटर आदि निर्जन स्थानों में रहना २. विमोचितावास-दूसरो के द्वारा छोडे गये स्थानों में निवास करना ३. परोपरोधाकरण- अपने स्थान पर ठहरे हुए दूसरे को नहीं रोकना ४. भैक्ष्य शुद्धि :- शास्त्र के अनुसार भिक्षा की शुद्धि की रखना ५. साधर्मी विसंवाद- सहधर्मियों के साथ यह मेरा है, यह तेरा है, ऐसा क्लेश नही करना।

ब्रह्मचर्यव्रत की पाँच भावनायें- १. स्त्री राग कथा श्रवण का त्याग करना २. तन्मनोहरा निरीक्षण त्याग ३. पूर्वरतानुस्मरण त्याग- अव्रत अवस्था में भोगे हुए विषयों के स्मरण का त्याग ४. वृष्येष्ट रस त्याग- कामवर्धक गरिष्ठ रसों का त्याग करना ५. अपने शरीर के संस्कारों का त्याग करना।

परिग्रहत्याग व्रत की ५ भावनायें- स्पर्शन आदि पाँच इन्द्रियों के इष्ट अनिष्ट आदि विषयों में क्रम से राग द्वेष का त्याग करना।

पणवीस किरिया-(२५ क्रिया) -१. सम्यक्त्व क्रिया -सम्यक्त्व वर्धक क्रिया देव, शास्त्र, गुरूओं की भक्ति करना। २. मिथ्यात्व क्रिया -कुदेव,

कुगुरू, कुशास्त्र की पूजा- स्तवनादि रूप मिथ्यात्व की क्रिया करना। ३. प्रयोग क्रिया-हाथ-पैर आदि चलाने के भावरूप, इच्छारूप क्रिया। ४. समादान क्रिया-संयमी का असंयम के सम्मुख होना। ५. ईर्यापथ क्रिया-कदम बढ़ाने के लिए साधु जो क्रिया करता है। ६. प्रादोषिकी क्रिया :- क्रोध के आवेश से द्वेषादिक रूप बुद्धि करना। ७. कायिकी क्रिया :- हाथ से मारना, मुख से गाली देना इत्यादि प्रवृति का भाग। ८. अधिकरणिकी क्रिया -हिंसा के साधनभूत , बन्दूक, छुरी इत्यादि लेना, देना, रखना। ९. परिताप क्रिया - दूसरे को दुःख देने में लगना। १०. प्राणातिपात क्रिया -दूसरे के शरीर, इन्द्रियाँ वा श्वासोच्छवास नष्ट करना। ११. दर्शन क्रिया -रागादि भाव से सौन्दर्य देखने की इच्छा। १२. स्पर्शन क्रिया -रागादि भाव से किसी चीज के स्पर्शन करने की इच्छा। १३. प्रात्ययिकी क्रिया :- विषयों की नवीन- नवीन सामग्री एकत्रित करना। १४. समन्तानुपात क्रिया :- स्त्री, पुरूष तथा पशुओं के उठने-बैठने के स्थान को मलमूत्र से खराब करना। १५. अनाभोग क्रिया :- बिना देखे या बिना शोधी जमीन पर उठना, सोना या कुछ धरना। १६. स्वहस्त क्रिया - जो काम दूसरे के योग्य हो उसे स्वयं करना। १७. निसर्ग क्रिया-पाप को बढ़ाने वाली करना। १८. विदारण क्रिया - दूसरे के दोष प्रकट करना। १९. आज्ञाव्यापादिनी क्रिया - शास्त्र की आज्ञा स्वयं पालन न करना और उसके विपरीत अर्थ करना तथा विपरीत उपदेश देना। २०. अनाकांक्षा क्रिया - आलस्य के वशीभूत हो शास्त्रों में कही गई आज्ञाओं के प्रति आदर या प्रेम न करना। २१. आरम्भ क्रिया- आरम्भजनक क्रिया स्वंय करना या करते हुए को देख हर्षित होना। २२. परिग्रह क्रिया-परिग्रह का कुछ भी नाश न हो, ऐसे उपायों में लगे रहना। २३. माया क्रिया-मायाचार से ज्ञानादि गुणों को छिपाना। २४. मिथ्या दर्शन क्रिया- मिथ्या दृष्टियों की तथा मिथ्यात्व से परिपूर्ण कार्यों की प्रशंसा करना। २४. अप्रत्याख्यान क्रिया-त्याग करने योग्य हो उसका त्याग न करना।

छब्बीस पृथ्वीयाँ -१. रूचिरा नाम की एक पृथ्वी है। वह भरत और ऐरावत के अवसर्पिणी काल में २. शुद्धा-नाम की पृथ्वी कही जाती है और

उत्सर्पिणी काल में। ३. खरा नाम की पृथ्वी कही जाती है। रत्नप्रभा भूमि के खर भाग में पिण्डरूप से एक दो हजार योजन परिमाण वाली निम्नलिखित सोलह भूमियों हैं। ४. चित्रा पृथ्वी। ५. वज्र पृथ्वी। ६. वैडूर्य पृथ्वी। ७. लोहितांक पृथ्वी। ८. मसारगंध पृथ्वी। ९. गोमेध पृथ्वी। १०. प्रवाल पृथ्वी। ११. ज्योति पृथ्वी।१२. रसांजन पृथ्वी। १३. अजंन मूल पृथ्वी, १४. अंक पृथ्वी, १५. स्फटिक पृथ्वी, १६. चंदन पृथ्वी, १७. वर्चक पृथ्वी,१८. वकुल पृथ्वी, १९. शिलामय पृथ्वी, २०. पंक भाग में ८४ हजार योजन के परिमाण वाली पृथ्वी तथा इसी भूमि के अब्बहुल भाग में ८० हजार योजन परिमाण वाली रत्नप्रभा नाम की नरक की पृथ्वी है और आकाश के नीचे ६ नरकों की भूमियाँ हैं कुल मिलाकर २६ पृथ्वीयाँ हैं।

सत्तबीस अणगारगुण - (२७ प्रकार के अनगार के गुण) - १२ भिक्षु की प्रतिमा (ये उत्तम संहनन वाले मुनियों के होती हैं), ८ प्रवचन माता (५ समिति तथा ३ गुप्तियों के पालन में), क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह, राग, द्वेष के अभाव रूप प्रवृत्ति।

अट्ठावीस आचार कल्प (२८ प्रकार के आचार कल्प) अर्थात् मुनि के मूलगुण :- ५ महाव्रत, ५समिति, ५ इंद्रिय निरोध, ६ आवश्यक, ७ विशेष गुण (नग्नत्व, अस्नान, भूमि शयन, अदंतधावन, खड़े होकर आहार लेना, एक भुक्त, केशलोंच)।

उनतीस पापसूत्र प्रसंग - अठारह पुराण, षडंग वाली लौकिक विद्यायें और बौद्ध आदि पाँच प्रकार के सिद्धान्त (१८+6+5=29)।

तीस मोहनीय स्थान - क्षेत्र वास्तु आदि बहिरंग परिग्रह से सम्बन्ध रखने वाला (क्षेत्र, वास्तु, हिरण्य, सुवर्ण, द्विपद, चतुष्पद, धन, धान्य, कुप्य, भांड), १० प्रकार का मोह, अंतरंग मिथ्यात्वादि से (मिथ्यात्व, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया, लोभ, वेद - स्त्रीवेद, पुरूषवेद, नंपुसकवेद), राग, द्वेष, मोह रखने के भाव रूप १४ भेद तथा पाँच इन्द्रिय और छठे मन से मोह जनित सम्बन्ध रखने के कारण (१०+१४+६=३०)।

इकत्तीस कर्मविपाक :- ज्ञानवरणीय के ५, दर्शनावरणीय के ६,

वेदनीय के २, मोहनीय के २, आयु के ४, नाम के २ (शुभ और अशुभ), गोत्र के २, अंतराय के ५। (५+9+2+2+4+2+2+5=31)।

बत्तीस जिनोपदेश - (छह आवश्यक) (समता, वंदना, स्तुति, प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, कायोत्सर्ग)। बारह अंग - आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्त्यंग, ज्ञातृकथांग, उपासकाध्ययनांग, अंतःकृद्दशांग, अनुत्तरोपपादिक दशांग, प्रश्न व्याकरणांग, त्रिपाक सूत्रांग, दृष्टिवादांग।

चौदह पूर्व-१. उत्पाद पूर्व,२. अग्रायणीय पूर्व, ३. वीर्यानुवाद, ४. अस्ति-नास्ति प्रवाद, ५. ज्ञानप्रवाद, ६. सत्यप्रवाद, ७. आत्मप्रवाद, ८. कर्मप्रवाद, ९. प्रत्याख्यान पूर्व,१०. विद्यानुवाद, ११. कल्याणानुवाद, १२. प्राणानुवाद, १३. क्रियाविशाल, १४. लोकबिंदुसार।

तेंतीस आसादना - ५ प्रकार के अस्तिकाय-१. जीवास्तिकाय,२. अजीवास्तिकाय, ३. धर्मास्तिकाय, ४. अधर्मास्तिकाय,५. आकाशास्तिकाय।

छह प्रकार के जीवो के निकाय -१ पृथ्वीकाय, २. जलकाय, ३. अग्निकाय, ४. वायुकाय, ५. वनस्पतिकाय, ६. त्रसकाय।

पाँच महाव्रत -१. अहिंसा महाव्रत, २. सत्य महाव्रत, ३. अचौर्य महाव्रत,४. ब्रह्मचर्य महाव्रत, ५. परिग्रहत्याग (अपरिग्रहो) महाव्रत। आठ प्रवचन माता- १. ईर्या समिति २. भाषा समिति, ३. एषणा समिति, ४. आदान- निक्षेपण समिति, ५. व्युत्सर्ग समिति।

३ गुप्ति- १. मनो गुप्ति, २. वचन गुप्ति, ३. काय गुप्ति। अर्थात् (५ समिति + ३ गुप्ति = ८ प्रवचन माता) और

नौ पदार्थ- १. जीव २. अजीव ३. आस्रव ४. बंध ५. संवर ६. निर्जरा, ७. मोक्ष, ८. पुण्य, ९. पाप। इन (सभी से) सम्बन्धी अनादर की भावना (५+६+५+८+९=३३) सब मिलाकर तेतीस आसादना होती हैं।

वे परमात्मा का ध्यान कर रहे थे। उनके भाव मेरू के समान स्थिर थे। वे अन्य गुणों इत्यादि से पवित्र थे और सुशोभित थे।।८७।।

(ग्वाले द्वारा मुनि की वैय्यवृत्ति)

तब दयापरायण बालक ने अपने मन में विचार किया। इस तीव्र शीत से पृथ्वीतल पर कोई कोई वृक्ष भी नाश को प्राप्त हो जाते हैं। गुणो के आधार , दिगम्बर, वीतराग, अति निस्पृह स्वामी कैसे ठहरते हैं।।८८,८९।।

वस्त्रादि से युक्त हम जैसे लोग शीतल वायु से दाँतों में संकट पाए हुए कम्पित होते हैं।। पशु भी दुःखी होते हैं।।९०।।

इस प्रकार विचार करते हुए दया से आर्द्र बुद्धि वाला ग्वाला घर जाकर काष्ठादिक लाकर आदरपूर्वक मुनिनाथ के चारों ओर समीप में दुःसह अग्नि जलाकर उन मुनि के हाथ-पैरों में अपने दोनों हाथ गरम-गरम कर अत्यधिक भक्तिभाव से युक्त होकर समीप में भ्रमण करता हुआ, शरीर में मर्दन करके, आनन्दपूर्वक स्वास्थ्य किया (शरीर की सेवा की)।।९१,९३।।

इस प्रकार महाप्रीति से रात्रि में सेवा करता हुआ वह बुद्धिमान वहीं ठहरा। सच है, आसन्न भव्यों की गुरू भक्ति में रति होती है।।९४।।

(मुनि द्वारा मंत्र देना)

दया सिन्धु सुनिस्पृह मुनीन्द्र भी सुखपूर्वक रात्रि में ध्यानकर सूर्यादय होने पर मन में योग निरोधक, "यह आसन्न भव्य है", ऐसा मानकर प्रमदप्रद (सुखप्रद) सात अक्षरों का महामन्त्र देकर वे उससे बोले।।९५,९६।।

"हे बुद्धिमान सुनो! इस मन्त्रराज के जपने से निश्चित रूप से समस्त कार्य सिद्ध हो जाते हैं और कष्ट क्षय हो जाते हैं।।९७।।

पृथ्वी पर समस्त विद्याधर और चक्रवर्ती आदि ने भी इस मन्त्र की आराधना कर स्वर्ग और मोक्ष पाया।।९८।।

तुम्हें भी सब जगह, कार्यों में अथवा गमनागमनों में सुख-दुःख में, भोजनादि में मन्त्रराज की आराधना करना चाहिए"।।९९।।

'णमो अरिहंताणं'

ऐसा कहकर परम पावन स्वामी मुनि स्वयं उसी सन्मन्त्र को कहकर आकाश रूपी आँगन में चले गए।।१००।।

उस मन्त्र से मुनि के उत्तम नभोगमन को देखकर उसकी तब उस मन्त्र में धर्मदायिनी श्रद्धा हो गई।।१०१।।

वह ग्वाला भी संसार के हितकारी अथवा निदानस्वरूप उस मंत्र को पाकर परम आदर से सन्तुष्ट आत्मा वाला होकर, भोजन, शयन, पान,यान,अरण्य, घने वन, पशुओं के प्रीतीपूर्वक रक्षण, बन्धन और मोचन में अन्यत्र समस्त कार्यों में प्रमोदपूर्वक अत्यधिक रूप से पढ़ता हुआ, गायों के दोहन काल में मन्त्र का उच्चारण करता था।।१०२-१०४।।

उससे सेठ ने पूछा- "हे ग्वाले! कहो, यह प्रवर मन्त्र, जो सैकड़ों सुखों को देने वाला है, इसे तुम्हें किसने दिया"?।।१०५।।

सुभग ने उसे शीघ्र ही प्रणाम कर उस मन्त्र की प्राप्ति का कारण कहा। उसे सुनकर बुद्धिमान् सेठ ने उसकी अत्यधिक प्रशंसा की।।१०६।।

हे पुण्यात्मा ! पुत्र "तुम धन्य हो। तुम्हीं गुणो के सागर हो, जो कि तुमने मुनि के दर्शन किए और संसार के हितकारी मन्त्र को पाया।।१०७।।

तुमने अपने जीव को भवसागर से निकाल लिया। तुम्हीं लोक में प्रवर हो, तुम्हीं शुभसंचय हो।।१०८।।

जिस प्रकार पालिश किया हुआ दर्पण सुनिर्मल होता है, उसी प्रकार अच्छे मन्त्र के योग से जीव निर्मलता को प्राप्त हो जाता है"।।१०९।।

इस प्रकार सम्यग्दृष्टि सेठ ने उसकी प्रशंसा कर ग्वाले को वस्त्र भोजन तथा उत्तम वाक्यों से संतुष्ट किया।।११०।।

तब से लकर पवित्रात्मा, धर्मवत्सल वह विशेष रूप से अपने पुत्र के समान उसका पालन करने लगा।।१११।।

(मन्त्रराज का माहात्म्य)

एक बार वह वन में जाकर मनोहर गंगातीर पर गाय, भैंस आदि के समूह को लाकर चरा रहा था।।११२।।

तब वह सावधान होकर पवित्र वृक्ष के मूल में सुख के धाम संसार के हितकारी अर्हन्त का नाम जपने लगा।।११३।।

जब वह सुखपूर्वक स्थित था, तब अन्य ग्वाला आया। उससे बोला-

"हे मित्र! तुम्हारी भैंस दूसरे किनारे पर जा रही हैं, शीघ्र जाकर इस समय उन्हें ले आओ"। उसके इस प्रकार वचन को सुनकर महासाहस से युक्त सुधी- भव्यात्मा सुभग ने भी गंगातट पर जाकर मनोहर उसी मन्त्र का भली भाँति उच्चारण कर वहाँ पर जल में छलांग लगाई। वहाँ पर खोटे आशय वाले मछुवारे के द्वारा सामने लगाई हुई कष्ट दायक तीक्ष्ण काष्ठ थी।।११४-११७।।

पापी दुर्जन के समान तीक्ष्ण होने के कारण उसके ऊपर वह शीघ्र गिरा और तब उसका पेट विदीर्ण हो गया।।११८।।

वहाँ पर अत्यधिक रूप से मन्त्र का स्मरण करते हुए मन में निदान किया। "मन्त्रराज की कृपा से मैं इस पुण्यात्मा सेठ के पुत्र होऊँ"। दस प्राणों से रहित होकर वृषभदास सेठ के जिनमती के शुभ उदर में तुम सुदर्शन नामक कुल दीपक सुपुत्र हुए हो। जैन धर्म की धुरा को धारण करने वाले धीर तुम चरम शरीरी हो।।११९-१२१।।

तुम दाता हो, भोक्ता हो, विचारज्ञ हो और श्रावकाचार में तत्पर हो। परमेष्ठि के महामन्त्र के प्रभाव से क्या नहीं होता है?।।१२२।।

जिससे शत्रु-मित्र जैसा आचरण करने लगता है, साँप माला हो जाता है, विष शीघ्र अमृत के समान हो जाता है, समुद्र स्थल के समान आचरण करता है।।१२३।।

जिस मन्त्रराज से पृथ्वी पर अग्नि जल के समान आचरण करती है। इसके प्रभाव का क्या वर्णन किया जाय? स्वर्ग और मोक्ष भी सम्भव है।।१२४।।

हे भव्य! परमेष्ठी के महामन्त्रों का प्रभाव भुवनत्रयगोचर है, उसे तुमने प्रत्यक्ष देखा है।।१२५।।

पहले जो भील्लराज की कुरंगी नामक तुम्हारी प्रिया थी वह अपने शरीर को छोडकर, पापरूप अपने कर्म से काशी देशस्थ वाराणसी नगरी में तृण का भक्षण करने वाली भैंस हुई। अनन्तर वह पशु से मरकर श्यामल नामवाले किसी धोबी की यशोमती नामक स्त्री के गर्भ से वत्सिनी नामक पुत्री हुई। वहाँ पर अपनी शक्ति से आर्यिका के संग कुछ पुण्योपार्जन कर यह रूप लावण्य से युक्त तुम्हारी प्रिय प्राणवल्लभा मनोरमा हुई है।।१२६,१२९।।

वह सर्वोत्कृष्ट सती नित्य दान, पूजा और व्रत में उद्यत रहती है। जैन धर्म की आराधना करने से जन्तु (प्राणी) पूज्यतम होता है।।१३०।।

गुरू विमलवाहन से इत्यादि भव्य सम्बन्ध सुनकर सेठ सुदशर्न मन में अत्यन्त सन्तुष्ट हुआ।।१३१।।

जिस धर्म कृपा से विशुद्ध प्राणिवर्ग कुगति के गमन से मुक्त हो जाता है, सुगति का संग हो जाता है, निर्मल और भव्यमुख्य हो जाता है, देव देवेन्द्र से वन्दनीय, संसार रूपी समुद्र के जहाज वह जिनदेव जयशील हों।।१३२।

इस प्रकार श्री सुदर्शन चारित्र में पंचनमस्कार माहात्म्य प्रदर्शक मुमुक्षु श्री विद्यानन्दि विरचित श्री सुदर्शन व मनोरमा की भवावली का वर्णन करने वाला अष्टम अधिकार समाप्त हुआ। ।

नवमोऽधिकार:

(सुदर्शन को वैराग्य)

अनन्तर विशिष्टात्मा सेठ अपने भवों का विस्तृत वर्णन सुनकर तत्क्षण वैराग्य प्राप्त कर अनुप्रेक्षाओं का विचार करने के लिए उद्यत हो गया।।1।।

अध्रुव अनुपेक्षा

निश्चित रूप से संसार में धन-धान्यादिक सब नष्ट होने वाला है। बिजली के समान समस्त सम्प्रदायें चंचल हैं।।2।।

कष्ट है, पुत्र, मित्र आदि सज्जन बन्धुओं का समूह तथा समस्त विषय आधे ही क्षण में विनष्ट हो जाते हैं।।3।।

हाथ मे आया हुआ रूप,सौभाग्य सौन्दर्य, यौवन अथवा वन, हाथी, घोड़ा, रथ, सेवकों का समूह (सब) मेघ और नदी के पूर के समान चंचल हैं।।4।।

इन्द्रधनुष के समान लक्ष्मी पुण्ययोग से उत्पन्न होती है। उस पुण्य के क्षय हो जाने पर वह लक्ष्मी विनष्ट हो जाती है, किसी के द्वारा भी स्थिर नहीं होती है।।5।।

चक्रीपना, वासुदेवपना, शक्रपना, धरणेन्द्र ये सब शाश्वत नहीं हैं, क्षुद्र जन्तुओं की तो बात ही क्या है?।।6।।

मायामय शरत्कालीन मेघ जिस प्रकार वायु के द्वारा विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार अपनी आयु का क्षय होने पर सर्वदा पोषित काय नष्ट हो जाती है।।7।।

जो घर, स्वर्ण आदि भोगोपभोग की वस्तुयें हैं, वे कालाग्नि की राख के समान सब ओर से नाश होने वाली हैं।।8।।

अन्य भी जो पदार्थ हैं, वे आधे क्षण में ही देखते देखते नष्ट हो जाते

हैं। अतः अपनी सिद्धि के लिए बुद्धिमान् को निर्ममत्व का चिन्तन करना चाहिए।।9।।

अशरण अनुप्रेक्षा

इस संसार में समस्त प्राणियों का मरण के क्षण माता, पिता, भाई, बहिन अथवा मित्र कोई भी शरण नहीं हैं।।10।।

स्वर्ग जिसका दुर्ग है, देव सेवक हैं, उत्कृष्ट शस्त्र वज्र है, जिसका हाथी ऐरावत है, वह भी काल के द्वारा ले जाया जाता है।।11।।

नव निधियाँ, चौदह रत्न, छः अंगवाली सेना तथा बन्धु बान्धव ये सब चक्रवर्ती के शरण नहीं हैं।।12।।

संसार में जन्म, मृत्यु, जरा का सर्वनाश करने वाला अनुत्तर रत्नत्रय भव्य जीवों के शरण योग्य है। अन्य कुछ नहीं।।13।।

संसारानुप्रेक्षा

चार प्रकार की गतियों रूप गड्ढे से युक्त द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव रूप पाँच प्रकार के संसार में अनादिकाल से लगे हुए कर्मों के द्वारा वश में किया हुआ जीव चुम्बक के द्वारा आकर्षित लोहे के समान भ्रमण करता है।।14 -15 ।।

नारकी जीव नरकों में मिथ्यात्व, कषाय और हिंसादि के कारण छेदन, भेदन, शूली आदि पर चढ़ाना आदि कष्ट बहुत समय तक भोगते हैं। माया पापादि के दोष से वे पशु घने ताडन, तापन आदि के तीक्ष्ण दुःखों को भोगते हैं ।।16 -17 ।।

पाप कर्म से मनुष्यों में इष्ट मित्र का वियोग तथा अनिष्ट का संयोग होता है। ।।18।।

पाप के कारण पराधीनता से नित्य दरिद्रता, जन्म, मृत्यु तथा जरा आदि से उत्पन्न दुःख मनुष्यों के नित्य होता है।।19।।

अन्त में मिथ्यात्व प्राप्त होने पर देवों को दूसरों की सम्पदा को देखकर मानसिक दुःख होता है।।20।।

श्रीमज्जिनेन्द्र के सद्धर्म से विहीन बहुत से लोग इस प्रकार दुख के भार स्वरूप संसार रूपी वन में भ्रमण करते हैं।।21।।

कहा भी है- एकेन पुद्गल द्रव्य यत्तत्सर्वमनेकशः ।
उपयुज्य परित्यक्त - मात्मना द्रव्यसंसृतौ ।।२२।।

द्रव्य संसार में एक ही पुद्गल द्रव्य को सबने अनेक बार स्वंय उपयोग कर छोड़ दिया।।22।।

क्षेत्र संसार में तीनों लोकों के समस्त प्रदेशों में जीव पुनः-पुनः मृत्यु को प्राप्त होता हुआ।।23।।

काल संसार में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी की वह कोई समयावली नहीं है, जिनमें मरकर स्वयं उत्पन्न नहीं हुआ।।24।।

भव संसार में नर, नारक, तिर्यञ्च और देवों में चारों ओर से मरकर जीव उत्पन्न हुआ।।25।।

भाव संसार में अनेक बार जीव ने निरन्तर अनेक बार असंख्येय जगन्मात्र भाव ग्रहण कर छोड़ दिए।।26 ॥

एकत्वानुप्रेक्षा

पुत्र, मित्र, कलत्रादि के कारण यहाँ पर एक प्राणी नाना प्रकार के शुभाशुभ कर्म करता है।।27।।

भव संकट होने पर उस फल को नरक, पशुयोनि, मनुष्य अथवा स्वर्ग में अकेला भोगता है।।28।।

अतः मूढ़ मन वाला जीव कुटुम्ब आदि के प्रति अत्यधिक ममत्व करता हुआ अपने हित और अहित को नहीं जानता है।।29।।

जिनभक्ति परायण एक निस्पृह विनीतात्मा भव्य गुरू के चरणकमल को नमस्कार कर, रत्नत्रय की आराधना कर सुनिर्मलतप कर शुक्लध्यान से कर्मरूपी शत्रुओं को मार कर मोक्षालय में जाता है।।30 -31।।

अन्यत्वानुप्रेक्षा

निश्चित से नीर क्षीर के समान शरीर में मिला होने पर भी जीव निश्चय से शरीर से अन्य है।।32।।

संसार में पुत्र, मित्र, स्त्री बान्धव आदि की तो बात ही क्या है, क्योंकि वे सव विशेष रूप से बहिर्भूत प्रवृत्त होते हैं।।33।।

जैसे कनक पाषाण में सुवर्ण सदा मिला हुआ है, तथापि अपने स्वरूप की अपेक्षा भिन्न रूप में ही स्थित है।।34।।

उसी प्रकार जीव भी सर्वदा ज्ञान और दर्शन वाला है। गुणों की खान स्वस्वरूप वह शरीर में विद्यमान है।।35।।

अशुचि अनुप्रेक्षा

यह शरीर माँस, हड्डी, खून और मलों से नित्य अपवित्र है, वीभत्स है, इसमें कृमियों का समूह है और क्षण मात्र में नष्ट हो जाने वाला है।।36।।

यह मानकर धीर पण्डितों को श्रीजिन, शास्त्र और साधुओं के प्रति भक्तिपूर्वक सुतपोयोग और नाना प्रकार के शुभव्रतों से प्रमाद और मद छोड़कर जिन वचनों के प्रति सावधान होकर अच्छा कुल पाकर सुखार्थियों को फल ग्रहण करना योग्य है।।37 - 38।।

आस्रवानुप्रेक्षा

टूटी हुई द्रोणी में जिस प्रकार जल प्रवाहित होता है, उसी प्रकार मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय तथा योगों से प्राणी के कर्मों का आस्रव होता है।।39।।

परिणाम विशेष से शुभ और अशुभ के भेद से वह आस्रव दो प्रकार का कहा गया है, ऐसी बुद्धिरूपी धन वाले व्यक्तियों को जानना चाहिए।।40।।

संवरानुप्रेक्षा

सम्यक्त्व और व्रत से संयुक्त उत्तम क्षमा और मानसिक ध्यान से मन रूपी बन्दर को रोककर दया रूपी संपत्ति से युक्त, प्रमाद से रहित लोगों द्वारा कर्मों का नित्य संवर किया जाता है। जिस प्रकार जहाज के रक्षक महासमुद्र में जल का निरोध करते हैं।।41-42 ।।

निर्जरानुप्रेक्षा

निर्जरा दो प्रकार की होती है- (१) सविपाक और (२) अविपाक। योगियों के कर्मों की एक देश हानि होती है।।43।।

कर्मों के उदय होने पर प्राणियों को दुःखादिक देकर क्रमशः हानि होना, विद्वानों ने सब जगह सविपाक निर्जरा मानी है।।44।।

जिनेन्द्र द्वारा कथित तप से बुद्धिमानों द्वारा जो कर्म की हानि की जाती है, वह परमोदया अविपाक निर्जरा जाननी चाहिए।।45।।

लोकानुप्रेक्षा

जहाँ पर सदा जीवादिक पदार्थ देखे जाते हैं, उसे जानने वाले जिनेन्द्र मत के जानने वालों के द्वारा, वह लोक कहा जाता है।।४६।।

वह लोक निश्चित रूप से किसी रूद्रादि के द्वारा नहीं बनाया गया है। उसका तीन काल में कोई हर्ता नहीं माना गया है।।४७।।

अनन्त आकाश के मध्य में वह अनादि निधन है। वह अधो, मध्य और ऊर्ध्व के भेद से तीन प्रकार का कहा गया है।।४८।।

वह चौदह राजू ऊँचा सुशोभित है। उसका घनफल तीन सौ तेंतालीस घन राजू प्रमाण है।।४९।।

जिनेन्द्र भगवान के द्वारा उस लोक का विस्तार पूर्व-पश्चिम में क्रमशः नीचे सात राजू, मध्य में एक राजू तथा ब्रह्म स्वर्ग के अन्त में पाँच राजू और लोकान्त में एक राजू प्रमाण है।।५०।।

दक्षिण और उत्तर से चारों ओर से वह सात राजू है। जिस प्रकार वृक्ष छाल से वेष्टित है, उसी प्रकार लोक नित्य तीन वायुओं से वेष्टित है।।५१।।

रत्नप्रभा के अग्रभाग जिसका कि नाम खरादिबहल है, वह सोलह हजार योजन मोटाई वाला कहा गया है।।५२।।

द्वितीय पंकादिबहल भाग में मोटाई का प्रमाण चौरासी हजार योजन कहा गया है।।५३।।

उन दोनों भागों में नित्य भवनवासी देवों के द्वारा पूजित सात करोड़ बहत्तर लाख अनुत्तर श्री जिनेन्द्र भगवान के प्रासाद हैं, जो कि प्रतिमाओं से सुशोभित हैं ये ध्वजाओं से युक्त, शाश्वत और परम आनन्द देने वाले हैं।।५४-५५।।

व्यन्तरों के विमानों में असंख्यात रत्नमयी और सुवर्णमयी जिनालय हैं, उनकी मैं वन्दना करता हूँ।।५६।।

अस्सी हजार योजन प्रमाण जलादि बहल (अब्बुहल) भाग को आदि करके क्रम से नीचे सात पाताल भूमियों में जहाँ नारकी विद्यमान हैं वहाँ वे मिथ्यात्व, हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह के कारण कष्टकर दुष्ट कषाय आदि से, पूर्वजन्म में अर्जित पापों से छेदन, भेदन आदि के विविध प्रकार के दुःख सहते हैं।।५७-५८-५९।।

वे अपनी उत्पत्ति से लेकर मृत्यु पर्यन्त कवि की वाणी के अगोचर, ताड़न, तापन, शूलारोहण तथा अत्यधिक बुरी तरह मरने के दुःख को सहन करते हैं।।६०।।

एक राजू सुविस्तीर्ण मध्यलोक भी दुगुने-दुगुने विस्तार वाले असंख्यात द्वीप, सागरों से वर्णित है।।६१।।

जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड द्वीप तथा पुष्करार्द्ध में पाँच उन्नत सुमनोहर मेरु हैं।।६२।।

मेरु से सम्बन्धित उनके क्षेत्र हैं एक सौ सत्तर तीर्थंकर की जन्म भूमियाँ हैं।।६३।।

जहाँ भव्य जगत के हितकारी जिनधर्म की आराधना कर अपनी शक्ति से स्वर्ग और मोक्ष सम्बन्धी सुख प्राप्त करते हैं।।६४।।

मेरु आदि में श्री जिनेन्द्र भगवान के चार सौ अट्ठावन जगद्धितकारी प्रासाद सुशोभित हैं।।६५।।

ये जिनालय नित्य स्वर्णमय, ऊँचे, शाश्वत और सुखकारी हैं। ये रत्नों की प्रतिमाओं से युक्त हैं और मनुष्य तथा देवों के अधिपों के द्वारा पूजित हैं।।६६।।

व्यन्तरों और ज्योतिषियों के विमानों में नित्य असंख्यात जिनेन्द्र भवन हैं।।६७।।

मनुष्य और पशु आदि से भरे हुए इस तिर्यग्लोक में कृत्रिम जिन भवन हैं।।६८।।

सौधर्मादिक कल्पों में त्रेसठ पटलों में चौरासी लाख जिनेन्द्रों के प्रासाद हैं।६९।।

तथा ये सत्तानवें हजार तेईस रत्नों के मनोहर बिम्बों से प्रकृष्ट रूप से सुशोभित हैं।।७०।।

समस्त देवेन्द्र, देवों का समूह तथा अहमिन्द्रों के द्वारा भक्तिभाव पूर्वक पूजित और वन्दित उन्हें मैं नित्य शान्ति के लिए सेवित करता हूँ।।७१।।

त्रैलोक्य के मस्तक पर रम्य प्राग्भार नामक शिलातल के छत्राकार, सुविस्तीर्ण, समुज्ज्वल सिद्धक्षेत्र है।।७२।।

उसके ऊपर कुछ कम गव्यूति प्रमाण तनुवात (वलय) में सदा निरंजन सिद्ध प्रतिष्ठित हैं।।७३।।

जिनके स्मरण मात्र से रत्नत्रय से पवित्र मुनि लोग उस पद को प्राप्त करते हैं वे सिद्ध शान्ति के लिए हों।।७४।।

इत्यादिक छह द्रव्यों से सदा भरा हुआ सारा जगत् महाभव्यों के द्वारा संवेग के लिए जिनेन्द्र भगवान् के वचनों के अनुसार चिन्तनीय हैं।।७५।।

बोधि दुर्लभानुप्रेक्षा

बोधि से रत्नत्रय की प्राप्ति होती है, बोधि संसार रूपी समुद्र से तारने वाली है, बोधि स्वर्ग और मोक्ष को साधने वाली है, नित्य वह बोधि सदा सेवित की जाती है।।७६।।

रत्नत्रय दो प्रकार का कहा गया है- १. व्यवहार से २. निश्चय से। जिनोक्त तत्त्वसंग्रह में श्रद्धान करना व्यवहार से सम्यक्त्व है। भव्यजीवों का व्रत समूह रूपी भूषण भव्य जीवों को नित्य स्वर्गादि सुख को देने वाला है, दुर्गति को नष्ट करने का कारण है।।७७-७८।।

निःशंकितादि आठ अंगों से युक्त वह सम्यग्दर्शन मदरहित भव्य में प्रक्षालित महारत्न के समान सुशोभित होता है।।७९।।

ज्ञान आठ प्रकार का होता है (जिसमें पाँच सम्यग्ज्ञान व तीन मिथ्याज्ञान हैं तथा सम्यग्ज्ञान के आठ अंग होते हैं) उसकी मुमुक्षों को नित्य समाराधना करना चाहिए। यह ज्ञान केवलज्ञान को देने वाला है, जिनेन्द्र

कथित है और विरोध से रहित है।।८०।।

मुनि और श्रावक के भेद से युक्त चारित्र दो प्रकार का जानना चाहिए। मुनियों के चारित्र के तेरह भेद होते हैं और श्रावकाचार ग्यारह प्रकार का होता है।।८१।।

निश्चय से निजात्मा शिव के समान शुद्ध-बुद्ध है। इस निजात्मा का दुराग्रह से रहित महाभव्यों को सेवन करना चाहिए।।८२।।

भाव से शुद्ध रत्नत्रय परमानन्द का कारण है। इत्यादि बोधि की आराधना करना चाहिए। यह सज्जनों का सार रूप आभूषण है।।८३।।

धर्मानुप्रेक्षा

पाप कर्म से संसार सागर में पड़े हुए जीवों को जो स्वर्ग और मोक्ष से उत्पन्न (स्वकीय) पद में धारण कराता है।।८४।।

वह जिननाथ के द्वारा कथित धर्म दशलक्षण रूप माना गया है। दशलक्षण नाम वाला वह धर्म रत्नत्रयात्मक भी है।।८५।।

कर्मरूपी शत्रुओं से नित्य संसार में भ्रमण करने वाले बुद्धिरूपी धन वाले प्राणी दुर्लभ उसे पाकर ऐसा कोई कार्य नहीं जिसे न कर सकें।।८६।।

मुनि और श्रावकों का परमाश्रय भूत वह धर्म भी दो प्रकार का कहा गया है। मुनिधर्म दश प्रकार का है। श्रावक धर्म दान, पूजा, व्रत रूप है।

धर्म से विपुल लक्ष्मी की प्राप्ति होती है। धर्म से विमल यश की प्राप्ति होती है। धर्म से स्वर्ग का उत्तम सुख प्राप्त होता है, धर्म से परम पद की प्राप्ति होती है।।८८।।

सुखार्थी भव्यों के द्वारा इत्यादि रूप से धर्म का सद्भाव जानकर श्रीमज्जिनेन्द्र सद्धर्म का नित्य प्रसन्नतापूर्वक भले प्रकार सेवन किया जाता है।।८९।। "इति द्वादशानुप्रेक्षा"

इस प्रकार महाभव्य शिरोमणि बुद्धिमान् सुदर्शन अनुप्रेक्षाओं का चिन्तन कर दीक्षा लेने के लिए उद्यत हो गया।।९०।।

इस प्रकार अत्यधिक रूप से जिनधर्म कर्मचतुर गुणों की निधि, वैराग्य रत्नाकर सेठ अपने मन में शुभ भावना का भली-भांति ध्यान कर

सभी लोगों को क्षमा कर क्षमा से युक्त हो स्वयं भक्तिपूर्वक उन विमलवाहन मुनि को नमस्कार कर दीक्षा लेने के लिए उद्यत हो गया।।९९।।

इस प्रकार श्री सुदर्शन चरित्र में पंचम नमस्कार माहात्म्य प्रदर्शक मुमुक्ष श्री विद्यानन्दि रचित द्वादशानुप्रेक्षाओं का वर्णन करने वाला नवम अधिकार समाप्त हुआ।

दशमोऽधिकार:

(राजा व सेठ की दीक्षा)

अनन्तर विशुद्धात्मा सेठ शल्यरहित मन वाला होकर **सुकान्त नामक** पुत्र के लिए वैभव व समस्त श्रेष्ठि का पद आदि देकर, भक्ति से उत्तम बुद्धि वाले उन विमल वाहन गुरु को नमस्कार कर बोला कि, ''हे करुणासिन्धु! मुझे जिनेन्द्र भगवान द्वारा कथित दीक्षा दीजिए।।१-२।।

श्रीमान् की चरण कृपा से मैं अपना हित करता हूँ''। मुनीन्द्र सम्यग्ज्ञानी वे भी उसके निश्चय को दृढ़ मानकर, मुनियों की सार रूप आचार विधि को युक्तिपूर्वक कहकर, उसे भली भाँति स्थिर कर यथायोग्य अभीष्ट वचन बोले।।३-४।।

तब भव्य सुदर्शन ने उनके परमानन्ददायक उपदेश रूपी रसायन को पाकर और उन्हें प्रणाम कर मन, वचन और काय की शुद्धिपूर्वक बाह्य और आभ्यन्तर आशक्ति को त्याग कर, केंशलोच कर, व्रत से युक्त जिनेन्द्र दीक्षा ग्रहण कर ली।।५-६।।

सच है, सज्जन लोग सुदर्शन की तरह शुभ अवसर पाकर अपनी आत्मा का अत्यधिक रूप से कल्याण करते हैं।।७।।

तब उस सबको देखकर धात्रीवाहन राजा ने पुनः अपनी स्त्री के समस्त कष्टकारी कर्मों की निन्दा कर, अपने मन में भयभीत होकर विचार किया, ''अहो! यह सुदर्शन जिनभक्ति परायण है।।८-९।।

छोटा होने पर भी करुणानिधि, शीलसागर (यह) बुद्धिमान इस समय सब कुछ त्याग कर मुनीश्वर हो गया।।१०।।

अत्यन्त मूढ़ बुद्धि वाला नारी में आसक्त, विषयाशक्त मैं धतूरा खाने वाले मनुष्य के समान किंचित अपना हित नहीं जानता हूँ।।११।।

इस समय भी मैं निश्चय से अपना कार्य करता हूँ। संसाररूपी भीषण वन में दुःखी मैं कैसे रहूँ?''।।१२।।

इत्यादिक विचारकर पुत्र को राज्य देकर, प्रसन्नतापूर्वक सेठ के पुत्र सुकान्त को सेठ के पद पर स्थापित कर, सुखदायक जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक, पूजन कर यथायोग्य सबको दान देकर, सबको युक्तिपूर्वक सन्तोष दिलाकर, पराक्रमशाली बहुत सारे क्षत्रिय सेवकों के साथ उसी को ही गुरु मानकर विचक्षण मुनि हो गया।।१३-१४।।

सच है जो संसार में जिनधर्म विचक्षण भव्य हैं, वे बुद्धिमान नित्य अपना हित साधते हैं।।१६।।

तब उसकी अन्य रानियों ने भी अन्तःपुर में समस्त परिग्रह का त्याग कर वस्त्र मात्र को ग्रहण कर अपने योग्य तप को स्वीकार किया।।१७।।

तथा अन्य जैनधर्म में सुतत्पर बहुत से भव्यों ने श्रावकों के व्रत विशेषतः अत्यधिक रूप से ग्रहण किए।।१८।।

कुछ बुद्धिमानों ने वहाँ संसार भ्रमण के नाश करने वाले शुद्ध सम्यक्त्व रूपी उत्तम रत्न को आदरपूर्वक पाया।।१९।।

(मुनि सुदर्शन की पारणा)

वहाँ पर चम्पा में जिनदीक्षा विचक्षण वे मुनिश्रेष्ठ पारणा के दिन कष्टकर मानादिक छोड़कर, जैनेश्वर निर्ग्रन्थ मार्ग को आत्मा की सिद्धि के लिए मानकर ईर्यापथ की महाशुद्धि से भिक्षा के लिए निकले।।२०-२१।।

वहाँ पर वह स्वामी सुदर्शन नामक उत्तम मुनि चित्त में यह मानकर कि जिनेन्द्र कथित मुनि का मार्ग कल्याण प्रदान करने वाला है।।२२।।

तब वे मान और अहंकार से रहित होकर महान् होने पर भी नगर के मध्य भिक्षा के लिए निकले। अपने रूप से उन्होंने कामदेव को जीत लिया था।।२३।।

वे दयारूपी लता से युक्त थे अथवा चलते-फिरते कल्पवृक्ष थे। बुद्धिमान वे ईर्यापथ दृष्टि से युक्त मन में अत्यन्त निःस्पृह थे।।२४।।

छोटे, बड़े सभी घरों के प्रति अत्यधिक रूप से समभाव को भाते हुए उनके रूप को देखकर नगर की समस्त स्त्रियाँ, महाप्रेमरस से पूर्ण हो गईं, जिस प्रकार समुद्र को देखकर सरितायें प्रेमरस से पूर्ण हो जाती हैं उसे देखने

के लिए शीघ्र ही चारों ओर से परम आनन्द से मिल गईं।।२५-२६।।

उसे देखने की उत्सुक वे गृहकार्य छोड़कर काम से विह्वल होकर पद-पद पर लड़खड़ाने लगीं।।२७।।

कोई कोई परस्पर 'अहो रूपम्' इस प्रकार रूप के विषय में कहने लगीं। जिस प्रकार भ्रमरियाँ कमलों के समूह के ऊपर दौड़ती हैं, उसी प्रकार प्रेमपूर्वक दौड़ने लगीं।।२८।।

कोई नारी सखी से बोली- ''हे प्रिये! मनोरमा नारी धन्य है, जिसके द्वारा यह प्रसन्नतापूर्वक सेवन किया गया।।२९।।

कोई बोली- ''यह सुदर्शन नामक महाबुद्धिमान् जगन्मान्य राजश्रेष्ठी है, जिसके शरीर का आलिंगन लक्ष्मी करती है।।३०।।

जिसके द्वारा वह अत्यधिक उन्मत्त कपिल की प्रिया ब्राह्मणी वंचित की गई, जिसने काम से दुःखी राजा की स्त्री का त्याग कर दिया।।३१।।

यह वह स्वामी हैं, जो कल्याणप्रद जैनी दीक्षा लेकर महामुनि हो गए, वे बुद्धिमान हैं, पवित्र हैं और शील के सागर हैं''।।३२।।

कोई बोली- ''महान् आश्चर्य है, जिसने महान् बुद्धिशालिनी, महारूपवती मनोरमा को पुत्र सहित त्याग दिया''।।३३।।

जिनेन्द्रों के धर्म-कर्म में तत्पर कोई बोली- ''हे सखि! तुम व्यक्त मेरे वचन को स्थिर मन से सुनो।।३४।।

यहाँ पर संसारी मनुष्य स्त्रीधन के प्रति राग से अन्धे हैं, भोगों के प्रति जिनकी मन की लालसा लगी हुई है। बुरी दशा वाले, वे जिनेन्द्रोक्त तप रूपी रत्न को कैसे ग्रहण कर सकते हैं।।३५।।

यह जैनमत में दक्ष है, मोक्षार्थी यह अपनी सम्पदा का त्याग कर घोर तप कर रहा है, भीरू व्यक्तियों के लिए यह तप दुःसह है''।।३६।।

कोई बोली- ''हे भोली-भाली सखी! तुम व्यर्थ ही कटाक्ष निरीक्षण क्यों कर रही हो? यह मुक्ति रूपी स्त्री से अनुरंजित है।।३७।।

लोक में इसकी जननी धन्य है, जिसने भूतल को पवित्र करने वाले, मुक्तिगामी, दया के सागर मुनि को उत्पन्न किया''।।३८।।

कोई बोली- ''इस नगर में यह आहार के लिए जा रहा है''।।३९।।

जब नारियाँ परम आनन्द से भरी हुई इत्यादिक बोल रही थीं, तब उन्होंने अपने मन में महान आश्चर्य को प्राप्त किया।।४०।।

तब वहाँ नगर में किसी महान् पुण्योदय से उस मुनि को देखकर कोई घर आए हुए निधान के समान सन्तुष्ट हुआ।।४१।।

गृहस्थाचार से पवित्र आत्मा वाले उसने बारम्बार प्रणाम कर हे मुनि! ''स्वामिन! ठहरिए, ठहरिए'' इस प्रकार भली-भांति बोलते हुए, प्रासुक जल लाकर उनके चरण धोकर। इस प्रकार नव पुण्य और दाता के सात गुणों से युक्त हो, उस सुपात्र के लिए उत्तम आहार दिया। वह (आहार दान) स्वर्ग और मोक्ष सुख रूपी उत्तुंग फल के वृक्ष सिंचन के तुल्य था।।४२-४४।।

(मुनि सुदर्शन का तप)

समस्त मुनियों ने उसके समान उत्तम पारणा की, अपने स्थान पर आकर अपनी क्रियाओं में सुखपूर्वक स्थिर रहे।।४५।।

अब से बुद्धिमान सुदर्शन शुद्ध श्रद्धापूर्वक गुरु के समीप जिनेन्द्रोक्त समस्त शास्त्र रूपी महान समुद्र को, अपने गुरु के प्रति भक्ति, नित्य प्रसन्नतापूर्वक ग्रन्थ और अर्थ के अनुसार (सीखकर सुखपूर्वक स्थित रहे) बुद्धिमान अत्यधिक रूप से (किसी कार्य के) पार हो जाता है। गुरु भक्ति फलप्रद होती है।।४६-४७।।

जो भव्य जीव हैं, वे उस सुखदायिनी गुरुभक्ति को करते हैं। महाभव्य मन, वच, काय से शुद्ध होते हैं और परम सुख प्राप्त करते हैं।।४८।।

अनन्तर तत्व ज्ञानियों में श्रेष्ठ वह सर्वशास्त्रज्ञ होकर सब जगह समस्त प्राणियों के प्रति दया का पालन करते हुए वह मन, वचन, काय के योग से त्रस होकर स्थावर जीवों के प्रति (दया का पालन करते थे) दया को सर्वज्ञों ने धर्म रूपी वृक्ष का मूल कारण कहा है।।४९-५०।।

विरोध से रहित सत्य, हित और परिमित वाक्य (बोलना) नित्य जिनागम में कहा गया है। उसका बुद्धिमान लोग मन, वचन, काय से सेवन

करते हैं।।५१।।

(ऐसा वाक्य) जैन तत्वज्ञों ने जीव दया का कारण कहा है। जिससे इस लोक में सत्कीर्ति, सुलक्ष्मी, सुयश होता है।।५२।।

स्वामी अदत्तविरति (नामक व्रत को) सर्वथा पाल रहे थे। जो परद्रव्य को ग्रहण करता है, उसके जीवदया कहाँ से हो सकती है।।५३।।

समस्त पापों का क्षय करने वाले, जगत्पूज्य ब्रह्मचर्य को नव भेदों से वे सावधानीपूर्वक धारण करते थे।।५४।।

दृढ़ मन वाले उन्होंने स्त्री, नपुंसक और पशु आदि के कुसंग को त्याग दिया था। निर्जन सुवन आदि में वे विरागी सुखपूर्वक रहते थे।।५५।।

ब्रह्मचर्य से निश्चित रूप से सभी का मण्डन है, यतियों का विशेष रूप से मण्डन है। संसार के हितकारी उस ब्रह्मचर्य को उन्होंने जन्म से लेकर मोक्ष पर्यन्त धारण किया।।५६।।

जैसे रूप में नासिका, बल में राजा, वेग में घोड़ा शुभ माने जाते हैं उसी प्रकार धर्म में जीवदया, चित्त में दान और व्रत में शील शुभ माना जाता है।।५७।।

जीवदया का मूल शील है, वह पापरूपी दावाग्नि के लिए जल है। अपने व्रत की रक्षा करने को सज्जनों ने शील कहा है।।५८।।

ऐसा मानकर उस पवित्र आत्मा मुनीश्वर ने उत्तम गति के साधन शील का सावधानीपूर्वक यत्न से पालन किया।।५९।।

क्षेत्र, वास्तु, धन, धान्य, द्विपद, चतुष्पद, यान, शय्यासन, कुप्य और भाण्ड इन बाह्य दस (परिग्रहों) का स्वामी ने मन, वचन, काय से पहले से ही परित्याग कर दिया, जो शरीर से निस्पृह हैं, वे परिग्रह में रत कैसे हो सकते हैं।।६०-६१।।

विरुद्ध जिनेन्द्रोक्त जो पाँच प्राकर का मिथ्यात्व है, उसका स्वामी ने व्रत की रक्षा के लिए दूर से परित्याग कर दिया।।६२।।

उत्कट स्त्री, पुरुष, नपुंसक तीन वेदों के समान परिग्रह का भी त्याग कर उसका अत्यधिक रूप से परित्याग कर दिया।।६३।।

ज्ञान के बल से उन मुनि ने हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा और वेद इन सातों का मन, वचन, काय से त्याग कर दिया।।६४।।

कहा भी है- इह परलोयत्ताणां अगुत्तिभय मरण वेयणक्कस्सं ।
सत्त विहं भयमेयं णिछिट्ठं जिणवरिंदेण ।।६५।।

इहलोक भय, परलोक भय, अगुप्तिभय, मरणभय, वेदनाभय, अत्राणभय एवं अकस्मात भय आदि जिनवरों ने ये सात भय कहे हैं।।६५।।

आदरपूर्वक पुण्य रूप सार वाली क्षमा रूप जल की धाराओं से वह स्वामी चार कषाय रूपी दावाग्नि का शमन करते थे।।६६।।

यह मेरा बान्धव मित्र है, यह दुर्बुद्धि मेरा शत्रु है, इस प्रकार के भाव को त्याग कर वह समबुद्धि स्वतत्त्व में स्थिर रहते थे।।६७।।

चौदह प्रकार का आभ्यन्तर परिग्रह रूपी महान ग्रह को, जो कि दुस्त्याज्य है, उसका महामुनि ने त्याग कर दिया था।।६८।।

उन पाँच व्रतों की पच्चीस भावनायें हैं, एक-एक व्रत की ये पाँच-पाँच भावनायें माताओं के समान हितकारी हैं।।६९।।

मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, ईर्यासमिति, आदान - निक्षेपण समिति तथा देखकर अन्नपान ग्रहण करना ये अहिंसा व्रत की पाँच भावनायें हैं।।७०।।

क्रोध का त्याग, लोभ का त्याग, भय का त्याग, हास्य का त्याग तथा अनुवीचि भाषण ये पाँच सत्यव्रत की भावनायें।।७१।।

शून्यागारवास, विमोचितावास, दूसरों का उपरोध करने का त्याग, भैक्ष्यशुद्धि तथा साधर्मीजनों से विसंवाद का त्याग ये पाँच अचौर्यव्रत की भावनायें मुनिश्रेष्ठों ने कही हैं।।७२-७३।।

स्त्रियों के प्रति अनुराग रखने वाली कथाओं के सुनने का त्याग, उनके रूप को देखने का त्याग, पूर्व रति की स्मृति का त्याग, पुष्टाहार का त्याग तथा शरीर के श्रृंगार व संस्कार का त्याग चतुर्थ ब्रह्मचर्य नामक व्रत की ये पाँच भावनायें मुनि के शील रक्षण हेतु कही हैं।।७४-७५।।

इंन्द्रियों से उत्पन्न इष्ट अनिष्ट विषयों में मुनि के सदा राग-द्वेष का परित्याग ये अपरिग्रह नामक पंचम व्रत की भावनायें हैं।।७६।।

इस प्रकार उन पाँच व्रतों की उत्तम पच्चीस भावनाओं का स्वामी ने नित्य पालन किया।।७७।।

धीर दया परायण वे सदा इर्यापथशोधन करते थे मानो निधान को देख रहे हों ।।७८।।

ईर्यापथशोधन के बिना दयारूपी लक्ष्मी मुक्ति की प्रासाधिका नहीं होती है। जैसे रूप से युक्त शीलहीन नारी शोभित नहीं होती है।।७९।।

जिनागम के अनुसार स्वामी वचन रूपी अमृत बोलते थे। वे उत्कृष्ट सुख को देने वाली भाषा समिति का सेवन करते थे।।८०।।

श्रावकों के द्वारा युक्तिपूर्वक दिए गए शुभ अन्न - पानादिक को देखकर मुनि एक बार सन्तोषपूर्वक, तप की वृद्धि के निमित्त बीच-बीच में तप करते हुए मुनीश्वर नित्य एषणा समिति धारण करते थे।।८१-८२।।

आदान और ग्रहण में प्रायः उनका प्रयोजन नहीं होता था। समस्त कार्यों से रहित होने के कारण वे विशेष रूप से निस्पृह थे।।८३।।

तथा कदाचित किंचित पुस्तक को, कमण्डलु को मृदु पिच्छों के समूह से स्पर्श (प्रमार्जित) कर संयमी ग्रहण करते थे।।८४।।

क्वाचित् मलादिक को किसी प्रासुक स्थान पर त्याग करते हुए सुधी युक्तिपूर्वक प्रतिष्ठापन समिति का आश्रय लेते थे।।८५।।

दयारूपी वृक्ष के लिए मेघ के समान इस प्रकार जिन कथित पाँच समितियों को योगीन्द्र सावधान होकर पालते थे।।८६।।

सुधी पवित्रात्मा वे स्निग्ध और कोमल आठ प्रकार के स्पर्श का परित्याग कर इन्द्रियविजय के लिए उद्यत रहते थे।।८७।।

स्वेच्छापूर्वक आहारादि छोड़ने से मन, वचन, काय से शूर स्वामी जिह्वेन्द्रिय को भय रहित होकर जीतते थे।।८८।।

जो इन्द्रियों को जीतता है, वही शूर हैं, युद्ध में मरने वाला शूर नहीं है। इन्द्रियों को जीतने वाला शूर मोक्षार्थी होता है। रण में शूर इन्द्रिय खलम्पट है।।८९।।

चन्दन, अगुरु, कपूर और सुगन्धित द्रव्य के संचय की इच्छा का भी

स्वामी त्याग करते थे, इस प्रकार स्वामी इन्द्रियजय हुए।।९०।।

स्त्री को देखने में वे अत्यन्त विरक्त, समस्त वस्तुओं के स्वरूप को जानने वाले, उत्तम बुद्धिमान् वे चौथी चक्षु इन्द्रिय को नित्य जीतते थे।।९१।।

रागादि से युक्त गीत वार्ता के सुनने का भी निश्चित रूप से परित्याग कर वे जिनेन्द्र उक्तियों के प्रति प्रीतिपूर्वक अपने कान लगाया करते थे अर्थात् जिनेन्द्रोक्तियों को प्रीतिपूर्वक सुनते थे।।९२।।

इस प्रकार स्वामी अपनी पाँच इन्द्रियों के वंचकों को वंचित करते थे। जिनकी ऐसी सामर्थ्य है, ऐसा चतुर किसके द्वारा वंचित हो सकता है।।९३।।

याचना जिन्होंने छोड़ दी है, ऐसे परमार्थ को जानने वालों में श्रेष्ठ मुनीन्द्र परीषह जय के लिए मस्तक पर लौंच करते थे।।९४।।

दक्ष वे सामायिक के दोषों को छोड़कर चैत्य और पंच गुरुओं के प्रति भक्ति-पाठ क्रमादि से तीनों सन्याओं में श्री जिनेन्द्र की वन्दना और भक्ति में तत्पर रहकर समताभाव का आश्रय लेकर सदा अनुत्तर सामायिक करते थे।।९५-९६।।

समस्त पापों को नष्ट करने वाली, महान अभ्युदय को देने वाली चौबीस तीर्थंकरों की नित्य स्तुति करते थे।।९७।।

जिनके ज्ञानादि गुण प्रकट हैं ऐसे तीर्थंकर की वन्दना को चतुरों में उत्तम वह उनके गुणों की प्राप्ति के लिए नित्य करते थे।।९८।।

वे सुधी (वह) सदा प्रमाद को छोड़कर सर्वदा दोषों का क्षय करने वाले प्रतिक्रमण को अत्यधिक रूप से करते थे।।९९।।

प्रतिक्रमण के बाद वह विचक्षण नित्य देव, गुरु आदि की साक्षी पूर्वक सुख की खान प्रत्याख्यान को करते थे।।१००।।

अन्य जिस किसी वस्तु का जो अपनी शक्तिपूर्वक परित्याग धीर व्यक्तियों के द्वारा किया जाता है, उसे प्रत्याख्यान कहते हैं।।१०१।।

बुद्धिमान स्वामी काय से अत्यन्त निस्पृह होकर कर्मों की हानि के लिए अपनी शक्ति के अनुसार सदा कायोत्सर्ग करते थे।।१०२।।

योगिराज मुनियों को सुख का समूह प्रदान करने वाले छः आवश्यक

अथवा शिव की प्राप्ति के लिए आवास (आवश्यक) का साधन करते थे।।१०३।।

वे रेशमी, कपास के बने, रोम के बने, चमड़े के बने तथा पेड़ की छाल से निर्मित पाँच प्रकार के वस्त्रों के नित्य त्यागी थे।।१०४।।

जिनेन्द्र का नग्न रूप उत्कृष्ट निर्वाण का साधन है। ब्रह्मचर्य का (उससे) रक्षण मानकर उन्होंने नग्नत्व का आश्रय लिया था।।१०५।।

दयालु वे राग की हानि के लिए स्नान नहीं करते थे। उन्होंने धैर्य के कारण पृथ्वी पर सोने का अत्यधिक रूप से सेवन किया था अर्थात् वे पृथ्वी पर शयन करते थे।।१०६।।

मुनि मार्ग के तत्व को जानने वाले वे महामुनि प्रत्याख्यान की उत्कृष्ट रूप से रक्षा करने के लिए दन्तधावन नहीं करते थे।।१०७।।

भोजन पान की प्रवृत्ति की मर्यादा के प्रतिपालक वे महामुनि उन्नत होकर यथा-योग्य एक बार अपनी युक्ति से, सन्तोष भाव का आश्रय लेकर श्रावकों के घर अपने तप की सिद्धि के लिए आहार किया करते थे।।१०८-१०९।।

कृत, कारित से रहित, पवित्र दोष रहित दोनों पैरों के बीच चार अंगुल का अन्तर कर, वे मुनि सूर्योदय तथा सायंकाल की छह घड़ी छोड़कर मध्य के समय शुभ आहार को लेते थे।।११०-१११।।

धर्मध्यान में लगे हुए वे मोक्षसाधक मुनियों के इन शुद्ध २८ मूलुगणों को धारण करते थे।।११२।।

उत्तम क्षमा प्रमुख श्रीमज्जिनेन्द्र देव कथित दश प्रकार के धर्मों को वे प्रीतिपूर्वक पालते थे।।११३।।

मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति से उनकी आत्मा पवित्र थी, वे शील के समस्त प्रभेदों का पालन करते थे और बाईस परीषहों को सहते थे।।११४।।

समग्र बुद्धि वाले वे मन में तपों में मुख्य उत्तम उपवास को कर्म की निर्जरा का हेतु मानकर किया करते थे।।११५।।

जैसे अष्टांग शरीरों में मस्तक मुख्य कारण है, उसी प्रकार तप के बाहर भेदों में उपवास मुख्य है।।११६।।

कर्म के समूह का निवारण करने वाले अवमौदर्य तप को स्वामी प्रमाद को दूर करने के लिए तथा स्वाध्याय की सिद्धि के लिए किया करते थे।।११७।।

वृत्तिपरिसंख्यान नामक तप सन्तोष का कारण है। उसे वे वस्तु, गेह, वन के वृक्ष की गणनाओं से किया करते थे।।११८।।

जिनवाक्य रूपी अमृत के आस्वाद से जिन्होंने अपने मन को विशद बनाया है, परमार्थ को जानने वाले वे धीर रस त्याग के रूप तप को तपते थे।।११९।।

सुधी वे शील और दया पालन के लिए नित्य पृथ्वी पर विविक्तशय्या और विविक्त आसन का सेवन करते थे।।१२०।।

रति के नाथ कामदेव के उत्कृष्ट वैरी तत्त्व प्रयुक्त उनका त्रिकाल योग से संयुक्त कायक्लेश नामक तप होता था।।१२१।।

आन्तरिक विशुद्धि के लिए इस तरह छह प्रकार के गाढ़ तप को वे तपते थे। यह तप डरपोकों के लिए सुदुःसह हैं।।१२२।।

शुद्ध चारित्र वाले उनके कदाचित प्रमाद होता था तो शास्त्र के अनुसार शल्य का नाशक प्रायश्चित तप होता था।।१२३।।

सदा धर्मवत्सल वे रत्नत्रय की पवित्र मुनियों की भक्तिपूर्वक विनय करते थे।।१२४।।

इनके विनय से रत्नत्रय की विशुद्धि होती थी। सभी विद्यायें विनय से विशेष रूप से प्रकट होती हैं।।१२५।।

सच है, कमलों के समूह को सूर्य ही विकसित करने वाला होता है। अतः बुद्धिमानों को साधर्मियों की अत्यधिक रूप से विनय करना चाहिए।।१२६।।

दस प्रकार के उत्तम तपस्वी आचार्य,पाठकादि की अपने हाथ से जो विनय करता है, वह संयमी है।।१२७।।

भव्य जीवों के द्वारा जो सुपात्रों को आहार, औषधि, शास्त्र आदि दिया जाता है, उसे वैयावृत्य कहते है।।१२८।।

जो वैयावृत्य से विहीन है, उसके समस्त गुण अत्यधिक रूप से चले जाते हैं सच है, यहाँ पर सूखे तालाब में हंस नहीं रहते है।।१२९।।

वे वाचना,पृच्छना, आम्नाय, और धर्मोपदेश,इस तरह पाँच प्रकार का स्वाध्याय नित्य प्रमाद को छोडकर करते थे।।१३०।।

जिन उक्तियों के सार रूप शास्त्रों में अत्यधिक आनन्द से भरे हुए वे उन्हें कर्मों की निर्जरा का कारण मानकर उनकी रचना करते थे।।१३१।।

स्वाध्याय से शुभ लक्ष्मी और विमल यश होता है, अत्यधिक रूप से तत्वज्ञान स्फुरित होता है और केवलज्ञान होता है।।१३२।।

कहा भी है। - ज्ञान स्वभावः स्यादात्मा स्व स्वभावाप्तिच्युतिः ।
तस्मादच्युतिमाकाङक्षन् भावयेद ज्ञान भावनाम्।।१३३।।

आत्मा ज्ञानस्भावी है, स्वभाव की प्राप्ति होना अच्युति है। अतः अच्युति की आकांक्षा करता हुआ ज्ञानभावना को भावित करे।।१३३।।

वे मेरू के समान निश्चल मुनीन्द्र संवेगपरायण होकर निर्जन प्रदेश में विधिपूर्वक कायोत्सर्ग का आश्रय लेते थे।।१३४।।

चित्त में समस्त वस्तुओं के प्रति वे अमल निर्ममत्व का ध्यान करते थे। वे सोचते थे कि ''मैं एक शुद्ध चैतन्य हूँ, यहाँ पर मेरा कोई दूसरा नहीं है''।।१३५।।

इस प्रकार की भावना से उनके कर्मों की निर्जरा हो गई। सच है, सूर्य का उद्योत होने पर अन्धकार का समूह तत्क्षण ही चला जाता है।।१३६।।

चित्त में इष्ट वस्तु की प्राप्ति की स्मृति, अनिष्ट वस्तु के क्षय का चिन्तन, वेदना और निदान, इस प्रकार आर्तध्यान चार प्रकार का होता है।।१३७।।

चौथे, पाँचवे और छठें गुणस्थान तक निश्चित रूप से पशु आदि के दुःख का कारणरूप आर्त्त ध्यान धर्म का निवारण करने वाला है।।१३८।।

पाँचवें गुणस्थान तक हिंसा, झूठ, चोरी तथा विषय संरक्षण में उद्भूत

ध्यान नरकादि पृथ्वियों को प्रदान करने वाला है।।१३९।।

इन दोनों खोटे ध्यानों का स्वामी निश्चिय रूप से दुर्गति का कारण है। इसका त्याग करके दयासिन्धु समस्त द्वन्द्वों से रहित हो गये।।१४०।।

आज्ञा विचय, अपाय विचय और संस्थान विचय इन चार प्रकार का ध्यान स्वर्गादि सुख का साधन है।।१४१।।

वह मोक्षार्थी नित्य इन चार प्रकार के ध्यानों को करते हुए संसार के सार स्वरूप छः प्रकार के आभ्यन्तर सत्तपों को करते थे।।१४२।।

शुक्लध्यान के चार भेद हैं, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है, संसार भ्रमण को रोकने वाले उस ध्यान का कथन मैं आगे करूँगा।।१४३।।

इस प्रकार तप करते हुए उन्हें अनेक भव्य लोगों को परम आनंद देने वाली अनेक प्रकार की ऋद्धियाँ हो गई।।१४४।।

कहा भी गया है- बुद्धि तओ वि य लद्धी विउवण लद्धी तहेव ओसहिया ।
मण वचि अरकीणा वि य लद्धीओ सत्त पण्णत्ता ।।१४५।।

बुद्धि, तप, विक्रिया, औषधि, मन, वचन और काय इस प्रकार सात ऋद्धियाँ कही गईं हैं।।१४५।।

महाधीर वे गर्मी के समय पर्वत के उपर खडे होते थे, शीतकाल में बाहर खड़े होते थे और वर्षाकाल में वृक्ष के नीचे खडे होते थे।।१४६।।

ध्यानी, मौनी, महामना मुनीश्वर स्वामी महातप करते हुए कर्मों की शक्ति को शिथिल करते थे।।१४७।।

इस प्रकार मूल और उत्तम सद्गुणों के निधि, उत्तम रत्नत्रय से मण्डित, निर्मोह, परमार्थ पण्डित वह मुनीश्वर संसाररूपी समुद्र से तारने में एक मात्र निपुण, स्वर्ग और मोक्ष को देने वाले जिनोक्त तपों का अत्यधिक रूप से नित्य वृद्धि करते हुए किया करते थे।।१४८।।

इस प्रकार श्री सुदर्शन चरित्र में सुदर्शन के तप का वर्णन करने वाला दशम अधिकार समाप्त हुआ।।

एकादशोऽधिकारः

(वैश्या द्वारा उपसर्ग)

अनन्तर जैन तत्वज्ञानियों में श्रेष्ठ सुधी, परमोदय वह सन्मुनि स्वामी धर्मोपदेश रूपी अमृत से भव्य जीवों को अत्यधिक तृप्त करते हुए, नाना तीर्थों में विहार करने से और प्रतिष्ठादि का उपदेश देने से श्रीमज्जिनेन्द्र चन्द्र के द्वारा कहे हुए धर्म की भली भांति वृद्धि करते हुए, अनेक व्रत, शीलादि, दान और पूजा के गुण समूहों से नित्य मार्ग प्रभावना करते हुए, स्वयं कर्म के क्षय को चाहते हुए चारों ओर जिनों के ऊर्जयन्त (गिरनार) आदि सिद्ध क्षेत्रों में, पंचकल्याणक भूमियों में वन्दना, भक्ति करते हुए, समस्त जीवों के प्रति दयापरायण तथा विशुद्ध चित्त हो मुनिमार्ग के अनुसार विहार करते हुए, सुधी स्वामी ईर्यापथ से अवलोकन करते हुए पारणा के दिन पाटलीपुत्र पत्तन में आए।।१-६।।

तब उस नगर (पत्तन) में पण्डिता वह धाय स्थित थी। कामदेव को जीतने वाले उन मुनीन्द्र को आया हुआ सुनकर वह देवदत्ता से बोली। रे तुम मेरी कही हुई बात को सुनो। वह यह सुदर्शन निश्चित रूप से मुनि होकर आ गया है।।७-८।।

सौ मायाओं से युक्त महाकपटधारिणी उस वेश्या ने निज प्रतिज्ञा का स्मरण कर श्राविका का रूप बनाकर विक्रिया रहित उन्हें नमस्कार कर ठहरा लिया। दुष्ट अभिप्रायः वाली उन शुद्ध आशय वाले को घर के अन्दर ले गयी।।९-१०।।

जहाँ पर राजा की स्त्री (भी) काम से पीड़ित हो (वहाँ पर) जिसने सौ दुराचार किए, उस वेश्या का कहना ही क्या है?।।११।।

वहाँ पर काम से उन्मत्त वह उन मुनीश्वर से बोली- "हे मुने! आपका अच्छा रूप, यौवन चित्त को रंजित करने वाला है।।१२।।

मन को अभीष्ट इन भोगों से इस समय जीवन को सफल करो। नाना लोगों से आया हुआ मेरे पास बहुत सा धन है।।१३।।

यह धन चिन्तामणि के समान अक्षय है, कल्पवृक्ष के समान उत्तम है। इस सबको ले लो। तुम्हारी इष्ट दासीपने को करूँगी।।१४।।

हे सुधी! यहाँ आए हुए सब जगह समस्त मनोहर वस्तुओं से युक्त मेरे मन्दिर में मेरे संग से तुम्हें स्वर्ग (मिल) जाएगा।।१५।।

सदा प्राणों पर प्रहार करने वाले तुम्हारे तप रूप कष्ट से क्या? मेरे साथ भोगों को भोगते हुए तुम सर्वथा सुखी होओ"।।१६।।

अनन्तर धीर वीर एक मन वाले मुनि उससे बोले, "हे मुग्धा! तुम पाप के कारण संसार की स्थिति को नहीं जानती हो।।१७।।

समस्त लोगों का शरीर सर्वथा अपवित्रता का घर है। जल के बुलबुले के समान आधे क्षण में ही नष्ट हो जाता है।।१८।।

भोग नाग के शरीर के समान आभा वाले हैं, तत्क्षण प्राण हरण करने वाले हैं, सम्पत्तियाँ विपत्ति के समान हैं, बिजली के समान अत्यन्त चंचल हैं।।१९।।

करोड़ों सुख को करने वाले शीलरूपी रत्न का परित्याग कर जो बुरे अभिप्राय वाले अधम यहाँ दुराचार करते हैं।।२०।।

वे विषयासक्त मूढ़ अपने पाप से नरक जाते हैं, वहाँ जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त कवि की वाणी के अगोचर छेदन, भेदनादिक दुःख पाते हैं अतः सुदुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर शुभ कार्य किया जाता है"।।२१-२२।।

इत्यादि अत्यधिक रूप से कहकर वे मुनि दो प्रकार से संन्यास ग्रहण कर मेरू के समान श्निचल अभिप्राय वाले हो गए।।२३।।

स्वामी ने वैराग्य की वृद्धि के लिए चित्त में विचार किया - स्त्रियों का शरीर अपवित्र वस्तुओं का घर और पाप का कारण है।।२४।।

बाहरी सौन्दर्य से युक्त और किंपापक फल के समान कठोर है। कामियों के पतन का आगार है।।२५।।

निश्चय से यहाँ जगत में दुष्ट स्त्रियाँ तत्क्षण प्राण हरण करने वाली होती हैं। सर्पिणियों के समान यहाँ मूढ़ों को ठगने में निपुण हैं।।२६।।

(ये) नरक रूपी गड्ढे में गिराने वाली हैं, स्वयं गिरने में तत्पर हैं भोले

मृग के समूहों के लिए प्राणनाशक रस्सी है।।२७।।

प्रमादी कामान्ध व्यक्ति व्यर्थ ही प्रीति करते हैं जैसे धतूरा खाने वाले दुष्ट व्यक्ति स्वतत्व को नहीं जानते हैं।।२८।।

जो भव्य संसार में स्त्रीसंग के परांगमुख हैं, वे धन्य हैं उन्होंने शील व्रत का पालन कर परमोदय को प्राप्त किया है।।२९।।

मेरे द्वारा भी श्री जिनेन्द्रोक्त तत्व के प्रति चित्त लगाकर सर्वथा शील के रक्षण से उत्कृष्ट मोक्ष साध्य है"।।३०।।

इस प्रकार वे धीर मुनि अपने चित्त में अत्यधिक रूप से सोच रहे थे तभी उस पापिने ने मुनिश्रेष्ठ को उठाकर, अपनी शय्या पर रख लिया। काष्ठ के समान बने हुए उन मुनि ने मौन में स्थित रह निश्चल होकर विचार किया, "मेरे लिए यहाँ परमेष्ठी, पितामह सर्वथा शरण हैं, मैं शुद्ध, बुद्ध एक हूँ, पृथ्वी पर अन्य कोई (मेरा) नहीं है"।।३१-३३।।

तब उस पापिनी के घने गाढ़ आलिंगनों से, मुख अर्पित करने से, हाथ छूने से और रागपूर्वक बातचीत करने से, नग्न होकर अपने आकार दिखलाने और मर्दन से, इस प्रकार तीन दिन तक पीड़ित होने पर भी स्वामी उसी प्रकार स्थित रहे।।३४-३५।।

तब दुष्टा निरर्था देवदत्ता उन्हें अत्यधिक निश्चल मानकर मुनि को उठाकर शीघ्र श्मशान जाकर वहाँ श्मशान में मुनि को रखकर काला मुख धारण करके, वह पापिनी अपने घर चली गई। मद में उन्मत्त दुष्ट स्त्रियाँ क्या पाप नहीं करती हैं।।३६-३७।।

(व्यन्तरी द्वारा उपसर्ग)

तत्व चिन्तन में तत्पर, दक्ष, धीर बुद्धि वाले स्वामी जब तक श्मशान में ठहरे, तब तक वह भय से व्याकुल पापिनी व्यन्तरी आकाश मार्ग में भ्रमण करती हुई विमान के लड़खड़ाने से उन मुनि को देखकर, बोली, "रे! मैं तुम्हारे दुःख से मरकर देवता हुई हूँ। हे सुदर्शन! तुम किसी देव से रक्षित हो।।३८-४०।।

हे शठ! इस समय तुम्हारा कौन रक्षक है, बोलो। इस महाकोप से

बोलकर दारुण उपसर्ग करने लगी।।४०।।

तब मुनिराज के पुण्य के प्रभाव से वह सुधी भक्त यक्ष भी आकर उस देवी को रोकने लगा।।४२।।

वह भी देव के साथ सात दिन तक अत्यधिक युद्ध कर मानभंग पाकर इस प्रकार चली गई, जैसे सूर्य के कारण रात चली जाती है।।४३।।

तब सुदर्शन स्वामी उस घोर उपसर्ग में ध्यान रूप आवास में स्थित रहकर मेरु के समान स्थिर अभिप्राय वाले हो गये।।४४।।

(मुनिराज को केवलज्ञानोत्पत्ति)

वे शूरवीर कर्म के नष्ट करने में अत्यधिक सावधान हो गए। प्रकृतियों का क्रम मेरे द्वारा किचिंत निरूपित किया जाता है।।४५।।

भुवन में उत्तम सम्यग्दृष्टि नामक चतुर्थ गुणस्थान में पाँचवे, छठे तथा सातवें में यतीश्वर, धर्मध्यान के प्रभाव से उन स्थानों में अथवा क्वचित् तीन मिथ्यात्व प्राकृतियाँ, चार दुःकषाय, पाप की कारण देवायु, नरकायु और तिर्यंचायु इन दश प्रकृतियों को पहले ही मुनीश्वर नाश कर, आठवें गुणस्थान में क्षपकश्रेणी के आश्रित हो गए। सुधी अपूर्वकरण होकर नवम् गुणस्थान में स्थित होकर, परमार्थ के जानने वाले शुक्लध्यान के पूर्व चरण से पृथक्त्ववीतर्कवीचार नाम से विचारवान् (होकर), अनिवृत्तिकरण गुणस्थान के पूर्व भाग में आतप, चार जातियाँ, तीन निद्रायें, दो नरक, स्थावर, सूक्ष्म, तिर्यक्द्विक्, उद्योत इन सोलह प्रकृतियों का क्षय कर, दूसरे में अत्यधिक रूप से आठ कषाय, तीसरे में नपुंसक, चौथे में स्त्रैण, पाँचवे में हास्यादि छह, छठे में पुंवेद, तीन भागों में पृथक-पृथक क्रोध, मान और माया, नवम् में छत्तीस प्रकृति का विनाश कर, सूक्ष्मसांपरायगुणस्थान में सूक्ष्म लोभ का विनाश, क्षीणमोह गुणस्थान में दूसरे शुक्लध्यान का आश्रय ले लिया। उपान्त्य समय में सुधी ने प्रचला सहित निद्रा को छोड़कर अन्तिम समय में दर्शन की घाती चार, पाँच प्रकार से ज्ञान का विनाश करने वाली पाँच प्रकृतियाँ, पाँच अन्तराय, इस प्रकार घातिकर्म की त्रेसठ प्रकृतियाँ कही गई हैं।।४६-५७।।

इन्हें नाश कर तत्क्षण ही केवल ज्ञान रूपी सूर्य हो गए। सयोग

केवली गुणस्थान में वे सर्वप्रकाशक हो गए।।५८।।

उन संयत और सर्वदर्शी ने अनन्तवीर्य का आश्रय ले लिया। वे अनन्त सुख से सम्पन्न और परम आनन्ददायक हो गए।।५९।।

वर्द्धमान जिनेन्द्र के अन्तकृत्केवली स्वामी शरण रूप जिन भव्य जीवों के सुख के लिए जियें।।६०।।

समस्त देवेन्द्र, नागेन्द्र, चन्द्र, सूर्य आदि सुरेश्वर अपने आसन के कम्पन से केवलज्ञान सम्पत्ति को मानकर, चतुर्निकाय के देवों के समूह ने अपनी स्त्रियों सहित महाभक्ति से आकर शुभ गन्धकुटी का निर्माण कर, उत्तम छत्र और दो चामरों से सुशोभित सिंहासन (बनाया) तथा (वे) परम आनन्द से भरे हुए पुष्प वर्षा कर रहे थे।।६१-६३।।

जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, पीयूष, रत्नदीपक, काला अगरु, सुशोभित धूप और नाना प्रकार के फलों से, पाप के नाशक हजारों गीत, नृत्य और वाद्यों से उन जगत्पूज्य श्री सुदर्शन जिन की पूजा कर, आधे क्षण में ही लोकालोक को प्रदर्शित करने वाले वीतराग की वे सार रूप सम्पत्ति को देने वाली संस्तुति करने में प्रवृत्त हो गए।।६४-६६।।

''हे दयासिन्धु! तुम्हारी जय हो! हे केवल ज्ञान रूपी नेत्र ! जय हो, हे सर्वदर्शी !तुम्हारी जय हो, हे अनन्तवीर्य के धारी ! तुम्हारी जय हो।।६७।।

अनन्त सुख से संतृप्त हे परमोदय ! आपकी जय हो । हेदोष रूपी बनाग्नि के लिए मेघ स्वरूप त्रिजगत्पूज्य ! तुम्हारी जय हो।।६८।।

तुम समस्त उपसर्गों के विजेता हो, समस्त सन्देहों का नाश करने वाले हो, संसार से डरने वाले भव्यों को संसार समुद्र से तारने वाले हो।।६९।।

अच्छे ब्रह्मचारियों में घोर ब्रह्मचारी तुम ही हो। तपस्वियों में महान तीव्र तप के कर्ता आप ही हो।।७०।।

हे हितोपदेशी देव! तुम भव्यों पर कृपा करने वाले हो। आप प्रतापियों में प्रतापी हैं, कर्म शत्रु का क्षय करने वाले हैं।।७१।।

बन्धुओं में आप महाबन्धु हैं, भव्यों के समूह के रक्षक हैं, हे जगत्प्रभु! आप दोनों लोकों की महालक्ष्मी के कारण हो।।७२।।

आप गुणरूपी समुद्र के स्वामी हैं, आपका कौन पार पा सकता है? जड़ता को प्राप्त क्या हम पृथ्वी पर स्तुति करने में समर्थ हैं?।।७३।।

फिर भी हे देव! आपकी स्तुति भव्यों को सुख देने वाली है। यह हमारे संसार रूपी समुद्र को पार करने वाली हो'' ।।७४।।

वे समस्त इन्द्रादिक देव इत्यादिक स्तुति कर, प्रजा से युक्त समस्त राजा पुनः पुनः नमस्कार कर, धर्म के सुनने में मन लगाकर अपने दोनों हाथ मुकुलित कर (बैठ गये) और बोले - ''हे स्वामी! आपके मुख कमल में दृष्टि लगाकर सुख पूर्वक स्थित हैं''।।७५-७६।।

तव कृपासिन्धु स्वामी अपनी दिव्य भाषा से परम आनन्द बिखेरते हुए अपनी दिव्य भाषा में भव्यों से बोले।।७७।।

''यति का आचार संसार में सारस्वरूप हैं, मुनियों के सुख का कारण है, मूल और उत्तर गुणों से पवित्र और रत्नत्रय से मनोहर है।।७८।।

सार सम्यक्त्व से संयुक्त उपवास सहित दान, पूजा, व्रत, शील संसार के हितकारी हैं श्रावकों के लिए सुखप्रद हैं।।७९।।

नित्य परोपकार धर्मियों के उत्तम मन को प्रिय हैं, गुणों के अधीश ने इस प्रकार से समस्त प्राणियों के हितकर धर्म कहा।।८०।।

स्वामी ने सात तत्व अत्यधिक विस्तार से कहे, छः द्रव्य सब जगह लोक की स्थिति रूप संग्रह।।८१।।

पुण्य-पाप का फल, समस्त कर्म प्रकृतियों का समूह, जो कुछ भी जिनभाषित तत्व सद्भाव है''।।७२।।

इन सबको सुनकर भव्य समूह परम आनन्द से भर गए। जय शब्द के कोलाहल से उन्हें उन्होंने भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।।८३।।

तब उनकी केवलज्ञान रूपी सम्पदा को देखकर उस व्यन्तरी ने नमस्कार कर साररूप सम्यक्त्व ग्रहण कर लिया।।८५।।

सच है, पृथ्वी पर जो पापी भी हैं, साधु के संगम से उनकी भी अत्यधिक श्रद्धा हो जाती है। जैसे रस के संयोग से लोहा भी सोना हो जाता है।।८५।।

केवलज्ञान से उत्पन्न उस प्रकार के अतिशय को सुनकर सज्जनों से घिरे हुए पुत्र सुकान्त सहित मनोरमा ने आकर उन जिनेश्वर को देखकर धर्मानुराग से नमस्कार कर सुभक्तिपूर्वक अर्चना की तथा संसार, शरीर और भोगों से विशेष रूप से विरक्त हो गए। प्रिय उक्तियों से सबसे क्षमा कराकर सुकान्त पुत्र से पूंछकर मन वचन, काय से सब त्याग कर, वस्त्र मात्र स्वीकार कर वहाँ परम आदर से सुख देने वाली दीक्षा ग्रहण कर, मनोरमा सती ने पवित्र आर्यिका होकर जिनोक्त शुभ सुतप किया, जो कि संसार के चित्त को प्रसन्न करने वाला और दुःख का भंजन करने वाला है।।८६-९०।।

सच है, परमार्थ रूप से कुल स्त्रियों का यह नित्य न्याय है कि अपने स्वामी के द्वारा धारण किए हुए शुभ उदय वाले मार्ग को धारण करती हैं।।९१।।

पण्डिता धाय और उस देवदत्ता ने पवित्र स्त्री (आर्यिका मनोरमा) को प्रणाम कर निजात्म की निन्दा कर, गुणों के आश्रित अपने व्रतों को शीघ्र स्वीकार कर लिया। ओह! सज्जनों के प्रसंग से पृथ्वी तल पर क्या नहीं होता है?।।९२-९३।।

इस प्रकार भव्यजनों को पार करने वाली परम आनन्द की देने वाली सुदर्शन जिनेन्द्र की केवलज्ञान रूपी सम्पत्ति, जो कि समस्त देवेन्द्र, नागेन्द्र और विद्याधर आदि से समर्चित है, वह शुभोदया हमारे कर्मों की शान्ति के लिए होवे।।९४-९५।।

इस प्रकार विस्तीर्ण विभुति, केवलज्ञान मूर्ति, समस्त सुखों के विधाता, प्राणियों के शान्तिकर्ता, गुणों के समुद्र, अनन्तवीर्य रूप एक मुद्रा वाले, तीनों भुवनों के लोगों द्वारा पूज्य भव्य बन्धु श्रीजिन जयशील हों।।९६।।

इस प्रकार श्री सुदर्शन चरित्र में सुदर्शन महाराज को केवल ज्ञानोत्पत्ति का वर्णन करने वाला ग्यारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

द्वादशोऽधिकारः

(मुनिराज का निर्वाण)

अनन्तर श्री सुदर्शन नामक केवलज्ञानी, सत्य रूप में संसार के बन्धु, लोकालोक के प्रकाशक, अपने स्वभाव से पवित्रात्मा, भव्यजनों के पुण्य के उदय से बिना इच्छा के भी संसार के स्वामी अपने वाक्य रूपी अमृत की वर्षा से भव्य जनों के समूह को नित्य तृप्त करते हुए, सुर और असुरों से पूजित, परम आनन्द को देने वाले विहार को अत्यधिक करके, अपनी आयु के अन्त में स्वामी छत्र चामरादि विभूति का परित्याग कर शेष कर्मों का क्षय करने के लिए उद्यत हुए।।१-४।।

किसी शुभदेश में जिन निरालम्बन ठहर कर मौन होकर पाँच लघु अक्षरों की स्थिति को प्राप्त कर, उन यतीश्वर अयोगिकेवली देव ने दो गन्ध, पाँच रस, पाँच वर्णों के आश्रित पाँच प्रकृति वाले, वह स्वामी मुनि पाँच बन्धन, पाँच शरीर, पाँच संघात, छः संहनन, छः संस्थान, देव गत्यानुपूर्वी, दो विहायोगति, परघात, उच्छ्वास, अगुरुलघु, अयशःकीर्ति, अनादेय, अशुभ, शुभ, सुस्वर, दुःस्वर, स्थिरत्व, अस्थिरत्व, आठ स्पर्श, एक स्थान निर्माणवाक्, अंगोपांग, अपर्याप्ति, दुःख देने वाली दुर्भग प्रकृति, असातावेदनीय, प्रत्येक शरीर, पापकर्म करने वाला नीच गोत्र, एक वेदनीय इस प्रकार उपान्त समय में बहत्तर प्रकृतियों का समुच्छिन्न क्रिया नामक शुक्लध्यान से नाश कर चरम क्षण में आदेयत्व, मनुष्यगति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, पंचेन्द्रिय जाति, अनुत्तर यशः कीर्ति, पर्याप्ति, सातावेदनीय, त्रस, वादरपना, सुभगपना, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, इन बारह प्रकृतियों का नाश कर, शीघ्र ही सिद्ध, बुद्ध, निराबाध, निष्क्रिय, कर्म रहित मोक्ष प्राप्त कर लिया।।५-१६।।

यद्यपि उन्होंने काय के आकार का किंचित त्याग नहीं किया था, फिर भी अकायक हैं, तीनों लोकों के शिखर पर आरूढ़ तनुवात में स्थिर रूप से स्थित हैं।।१७।।

सम्यक्त्वादि अनुत्तर प्रसिद्ध आठ गुणों से युक्त हैं स्वभावतः कर्म

बन्धन से मुक्त और ऊर्ध्वगामी हैं।।१८।।

एरण्ड के बीज तथा अग्नि की शिखा के समान शीघ्र जाकर स्वामी तीनों लोकों के मस्तक पर, वृद्धि और ह्रास से रहित तनुवात में प्रतिष्ठित हो गए। वे अनन्त सुख से संतृप्त और शुद्ध चैतन्य लक्षण वाले हैं।।१९-२०।।

सौ कल्पकाल में भी विक्रिया रहित, अचल, धर्मद्रव्य का अभाव होने से उसके आगे नहीं जाते हैं।।२१।।

तीनों कालों में उत्पन्न देवेन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधरों, इन्द्र, भोगभूमि के मनुष्य तथा चक्रवर्तियों का जो सुख है।।२२।।

उसका अनन्त गुना सुख स्वामी नित्य भोग करते हैं इस प्रकार के स्वामी समय-समय पर मुझे सुख करें।।२३।।

अन्य सब जो गुणरूप शरीर वाले प्रबुद्ध सिद्ध तीनों कालों में समुत्पन्न हैं, वे सदा पूजित और वन्दित हैं।।२४।।

शुद्ध चैतन्य रूप सद्भाव वाले, जन्म, मृत्यु और जरा से अतीत संसार के हितकारी, समाराध्य वे कर्मों की शान्ति के लिए हों।।२५।।

धात्री वाहन आदि राजा जो कि तब मुनि हो गये थे, उन सबने अपने तपोयोग से स्वर्ग और मोक्ष प्राप्त किया।।२६।।

जिस सुमन्त्र की भली-भांति आराधना कर संसार का हितकारी ग्वाला भी इस प्रकार सुदर्शन हुआ, उसका अधिक क्या वर्णन किया जाये।।२७।।

अन्य भी बहुत से भव्यों ने परमेष्ठी के पदों का अत्यधिक उच्चारण कर संसार के सार स्वरूप सुख को निरन्तर पाया।।२८।।

तथा जिस परमानन्ददायक मंत्र की आराधना कर कुत्ता भी देव हो गया तो भव्य देहियों की तो बात ही क्या है।।२९।।

उनके साररूप फल को इस लोक में श्रीमज्जिनेश्वर के बिना इन्द्र अथवा धरणेन्द्र कौन वर्णन करने में समर्थ है।।३०।।

अन्य भी जो महाभव्य संसार के हितकारी इस मंत्र की प्रीतिपूर्वक आराधना करेगा, वह सुखी होगा।।३१।।

अतः भव्यों को सुख-दुःख में परमेष्ठी के इस मंत्र की आराधना करना चाहिए। यह सदा सार रूप स्वर्ग और मोक्ष का एकमात्र कारण है।।३२।।

रात में, प्रातःकाल, मध्याह्न में, संध्या काल सदा भव्यों को सुखप्रद इस मंत्र की आराधना करना चाहिए।।३३।।

इस मन्त्रराज के स्मरण मात्र से पृथ्वी पर समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं, जिस प्रकार सूर्योदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है।।३४।।

जैसे समस्त वृक्षों में कल्पवृक्ष सुशोभित होता है, उसी प्रकार समस्त मंत्रों में यह मन्त्रराज सुशोभित होता है।।३५।।

इत्यादि इस मंत्र के प्रभाव को सुनकर बुद्धिमानों को समस्त कार्यों में इस मंत्र का सदा स्मरण करना चाहिए।।३६।।

इस मंत्र से यहाँ भव्यों की मनोवांछित सम्पदा, धन धान्य और रम्य कुल सुनिश्चित होता है।।३७।।

अत्यधिक पुण्य के कारण सुदर्शन जिन के चरित्र को जो पढ़ते हैं, पढ़ाते हैं, लिखाते हैं, लिखते हैं।।३८।।

जो महाभव्य सुनते हैं, बार-बार भाते हैं वे देव, देवेन्द्र से संस्तुत महासुख को प्राप्त करते हैं।।३९।।

श्री गौतम गणीन्द्र के द्वारा कहे हुए इस सच्चरित्र को सुनकर उन्हें नमस्कार कर श्रेणिक सन्तुष्ट हुए।।४०।।

परमानन्द से भरे हुए अन्य बहुत से लोगों के साथ सुधी भावि तीर्थंकर वे रम्य राजगृहों में आए।।४१।।

गन्धारपुरी के जिन मन्दिर में, जो कि यहाँ छत्र, ध्वजादि से सुशोभित हैं, अपने पर के उपकार के लिए सुदर्शन का पवित्र चरित्र बनाया।।४२।।

भव्यजनों के द्वारा भावित, उत्तम यह सार रूप चरित्र रत्न प्रसन्नतादायक हो, उत्तम केवलज्ञानी सुदर्शन का यह चरित्र संसार रूपी समुद्र में उत्तम जहाज है।।४३।।

समस्त इन्द्रों के समूह से अर्चित, भव्य कमलों के सूर्य, गुणों की निधि, मिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नष्ट करने वाले, उत्तम शीलरूपी समुद्र के चन्द्रमा, पवित्र, दोषों के समूह से मुक्त, केवलज्ञानलोचन सुदर्शन जिन यहाँ सज्जनों का सतत मंगल करें।।४४।।

अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य (गणीन्द्र), पाठक (उपाध्याय) और मुनि श्री (साधु) नित्य शुभतर ये परमेष्ठी संसार से पार करने वाले हैं, ये भव्यों को निर्मल, विनाश रहित सुख करें, जिनका मन्त्र भी वांछित सुख, कीर्ति, प्रमोद और जय करता है।।४५।।

मेरे कवित्व का लेश होने पर यहाँ समस्त लोगों की एकमात्र नेत्र, जिनेन्द्र मुख से उत्पन्न श्री शारदा माता जिस प्रकार बालक को सुखकर है, उस प्रकार सुख करें।।४६।।

श्री मूलसंघ में, श्रेष्ठ भारतीय गच्छ में, अत्यन्त रम्य बलात्कार गण में श्री कुन्दकुन्द नामक मुनीन्द्र के वंश में प्रभा चन्द्र नामक महामुनीन्द्र हुए।।४७।।

उस पट्ट पर तीनों लोकों के हितकारी, गुणरत्नों के समुद्र, भव्य कमलों के सूर्य मुनि पद्मनन्दी भट्टारक यतीश सज्जनों का सार रूप सुख करें।।४८।।

उनके पट्ट पर कमलों के समूह के लिए सूर्य के समान मुनि चक्रवर्ती देवेन्द्र कीर्ति हुए, उनके चरणकमलों में भक्ति से युक्त विद्यानन्दी ने यह चरित बनाया।।४९।।

उनके पाद पट्ट पर चारित्र चूड़ामणि, संसार समुद्र को तारने में एकमात्र चतुर, प्राणियों के चिन्तामणि मल्लिभूषण गुरु उत्पन्न हुए। गुणों की निधान सूरिश्री श्रुतसागर, श्री सिंहनन्दी गुरु ये समस्त शुभतर यति श्रेष्ठ आपका मंगल करें।।५०।।

गुरुओं के उपदेश से यह शुभ, सुख देने वाला सच्चरित्र नेमिदत्त व्रती ने भावित किया।।५१।।

इस प्रकार श्री सुदर्शन चरित्र में सुदर्शन स्वामी के मोक्ष का वर्णन करने वाला बारहवाँ अधिकार समाप्त हुआ।

।।शुभ भवतु।।

सवंत १४९९ वर्षे आषाढ़ मासे शुक्लपक्षे।

समाप्त

पुण्यार्जक श्रावक

1.अर्चना जैन एच -29 ग्रीन पार्क दिल्ली
2.पुष्पा जैन / राकेश सी -224 ग्रीन पार्क दिल्ली
3.सुमना जैन पंचशील इंकलेव दिल्ली
4.ऋषि जैन सी -41 ग्रीन पार्क दिल्ली
5.अजय जैन / निशा जैन एन - 30 ग्रीन पार्क दिल्ली
6.चन्द्र प्रकाश जैन कैलाश कालोनी दिल्ली
7.रोमा जैन संदीप जैन 117 अर्जुन नगर दिल्ली
8.प्रेरणा जैन / अतुल जैन खेलगॉव दिल्ली
9.कुमुदइ जैन एन 27 ग्रीन पार्क दिल्ली
10.संजय जैन जे-1 ग्रीन पार्क दिल्ली
11.अर्चित जैन / सुचेता जैन ए-12 सर्वोदयी इंकलेब
12.स्नेहलता जैन जी -22 ग्रीन पार्क दिल्ली
13.रेनू जैन शांति निकेतन
14.माला जैन 87 सी कृष्णा नगर दिल्ली
15.सुमन जैन एच-42 ग्रीन पार्क दिल्ली
16.सतीश जैन / सरिता जैन वी-14 ग्रीन पार्क दिल्ली
17.नरेन्द्र बहादुर जैन ए-10 ग्रीन पार्क दिल्ली
18.सुशीला जैन टी-22 ग्रीन पार्क दिल्ली
19.कुसुम जैन ए-14 ग्रीन पार्क दिल्ली
20.संजय जैन वी-3 ग्रीन पार्क दिल्ली

21.सुशील जैन / मीना जैन आर-10 ग्रीन पार्क दिल्ली
22.रेखा जैन बी-4 ए अर्जुन नगर दिल्ली
23.कुसुम जैन बी-7 ग्रीन पार्क दिल्ली
24.दीप चंद्र जैन / इन्द्रा जैन जी-33 ग्रीन पार्क दिल्ली
25.रत्ना जैन टी-7 ग्रीन पार्क दिल्ली
26.दिनेश जैन / विवेक जैन 41-ए कृष्णा नगर दिल्ली
27.संध्या जैन विजय जैन साउथ एक्स
28.सरला जैन (राजीव जैन) एफ-83 ग्रीन पार्क दिल्ली
29.अरुण कुमार पालीवाल ई-9 ग्रीन पार्क दिल्ली
30.जय प्रकाश जैन यू-2 ग्रीन पार्क दिल्ली
31.त्रिशला जैन डी-1ए ग्रीन पार्क दिल्ली
33.संजय जैन,जी-16 ग्रीन पार्क दिल्ली
34.प्रवीन जैन,टी-6 ग्रीन पार्क दिल्ली
35.सुरेश जैन,गौतम नगर दिल्ली
36.रजनी जैन,अर्जुन नगर दिल्ली
37.रश्मी जैन,एन-31 ग्रीन पार्क दिल्ली
38.साधना जैन पी-1 ग्रीन पार्क दिल्ली
39.प्रमोद जैन सी-7 ग्रीन पार्क दिल्ली
40.सोरभ जैन जे-108 साउथ एक्स दिल्ली

''कीचड़ के कीड़े मत बनो''

पापी प्राणी की तरह कीचड़ का कीड़ा कीचड़ में जन्म लेकर वही कीचड़ में ही मर जाता है। कमल भले ही कीचड़ में पैदा होता है किन्तु वह कीचड़ में लिप्त नहीं रहता, जल का स्तर बढ़ने के साथ – साथ ऊपर उठता जाता है वह जल में भी लीन नहीं होता, इसी तरह धर्मात्मा प्राणी भी संसार में पैदा जरूर होता है किंतु, सत्संगति पाकर धर्म के क्षेत्र में वह आगे बढ़ता रहता है वह विषय वासना की कीचड़ में लिप्त नहीं होता, और न ही संसार से क्षणिक सुखाभास रूपी जल में विलीन होता है, वह तो परमात्मा रूपी सूर्य को देखकर विकसित होता रहता है उसकी संगति में आने वाले साधर्मी रूपी ओस बिंदु भी मोती की तरह प्रतिभासित होती है। अब बताओं तुम क्या बनना चाहोगे कमल या कीचड़ के कीड़े ।

दिगम्बराचार्य वसुनंदी मुनि

''काँटो में भी गुलाब कीचड़ में भी कमल''

कुछ लोग कहते हैं प्र ति का अन्याय तो देखो फूलों के साथ काँटे लगा दिये, सुन्दर इन्द्रायण फल में कड़वापन, सुन्दर रत्नों में कठोरता, स्वर्ण में निर्ग्रन्थता, गुड़ में सांवलापन, मेघों में श्याम, कुओं को गहरा, अग्नि में धूम, पवन को अस्थिर बना दिया है इत्यादि । उन महानुभावों से मैं कहना चाहता हूँ। संसार में किसी ने कुछ नहीं बनाया, सब सहजोत्पन्न है, जिस वस्तु का जैसा स्वभाव है वह अनादि से वैसा ही है अन्य नहीं हो सकता और न ही अन्यथा । आप अपनी दृष्टि विपरीत करके सुख के स्थान पर दुःखानुभूति करते हुए मात्र पाप का बंध करते रहते हैं। सद्दृष्टि वाला धर्मात्मा पुरुष तो यह सोचता है कि प्र ति कितनी उदार है उसकी व्यवस्था व्यवस्थित व सम्यक् है। देखो – कठोर इक्षुदण्ड में भी मिठास, कड़वे इन्द्रायण फल में भी सुन्दरता, काँटो में भी गुलाब, कीचड़ में भी कमल, काली लवंग में भी सुगन्धि, सांवले गुड़ में भी मिठास, खारे नमक में भी धवलता, कठोर पर्वतों में भी शीतल जल के झरने, श्याम मेघों में भी जल, जघन्यतम कूपों में भी जल, हवा में भी निः संगता है। हे प्रकृति ! धन्य है तू, तेरी शुद्ध दशा । प्रा तिक रूप ही तो परमात्मा के समान पूज्य है।

दिगम्बराचार्य वसुनंदी मुनि